राजसी कलाकार

लेखक
श्री रामजीलाल श्रीवास्तव 'सीतेश'

विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली
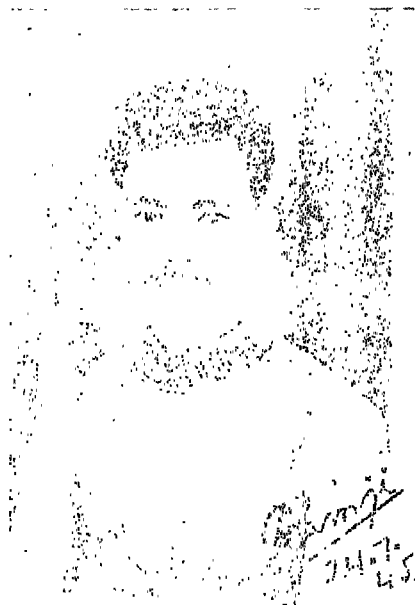
लेखक

मां।

मेरी जननी !

मेरी इस तुच्छ भेंट को अस्वीकार न करना।

मैं इसे तुम्हें समर्पित कर रहा हूं।

'सीतेश'

[१]

काश्मीर की तलहटी में स्थित आनन्दगढ़ राज्य की विशेष सभा हो रही थी। सभी प्रजा राजसभा में उपस्थित थी। विजयसिंह अपनी रानी समेत राजसिंहासन पर विराजमान थे। प्रजा अपना-अपना कष्ट उनसे निवेदन कर रही थी। वह उसे ध्यानपूर्वक श्रवण कर उचित व्यवस्था दे रहे थे। सहसा एक अट्ठारह वर्षीया नवयुवती, जिसका शरीर राजसी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित था, अपने स्थान से उठी तथा उनके सामने जाकर खड़ी होगई और नम्रतापूर्वक बोली, "राजन् !"

उसके इस शब्द से सभी मग्न सभासदों तथा राजा-रानी के नेत्र उस पर जा टिके। वे सब आश्चर्य में पड़ गये। विजयसिंह ने चौंककर कहा, "कमल, मेरी लाडो, यह कैसा पागलपन ?"

"राजन्, मैं भी कुछ निवेदन करना चाहती हूँ," गम्भीरतापूर्वक वह बोली। उसने मानों विजयसिंह का प्रश्न सुना ही नहीं।

"कमल, यह क्या...?" आश्चर्य-जनित मुद्रा में उन्होंने फिर प्रश्न किया। उनके हृदय की व्याकुलता ने उनका यह वाक्य पूर्ण न होने दिया।

"राजन्, आश्चर्य की कोई बात नहीं। मेरा यह पागलपन नहीं है, प्रत्युत मैं जो कुछ भी कह रही हूं वह उचित ही है," दृढ़तापूर्वक उसने उत्तर दिया।

"साफ-साफ कह बेटी, मैं समझने में असमर्थ हूँ," अधीरता-

पूर्वक उन्होंने याचना-सी की।

"राजन्, इस समय शायद आप यह सोच रहे हैं कि मैं आपकी पुत्री हूं। इसी नाते मैं जो कुछ निवेदन करना चाहती हूं उसे राजभवन में करूं। कदाचित् आप यह चाहते हैं," वह गम्भीर होकर बोली, परन्तु सरलतापूर्वक उनकी ओर देखने लगी। सभी सभासद आश्चर्य-चकित होकर वह दृश्य देख रहे थे।

"हां," भर्राये हुए कण्ठ से उन्होंने उत्तर दिया।

"तो इसका उत्तर स्पष्ट है कि आप राजभवन में राजसिंहासन पर न होंगे। न यह प्रजा ही होगी। उस समय आपकी श्रेणी प्रजा जैसी होगी," नम्रतापूर्वक उसने बड़ी सावधानी से समझाने का यत्न करते हुए कहा।

"तुम्हारे कथन का आशय मेरी......।"

"राजन्, सुनिये मेरा यह प्रस्ताव प्रजा के हित के लिए होगा। तभी तो मैंने इस समय कहा है। आप बड़े आश्चर्य में पड़े हैं। परन्तु आप तो मुझे प्रजा से उच्च समझे बैठे हैं। यह आपका भ्रम है राजन्! इस समय मेरी श्रेणी प्रजा की भांति है। तभी तो आपको पिता जी न सम्बोधित कर मैं 'राजन्' शब्द का प्रयोग कर रही हूँ," नम्रतापूर्वक उसने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा।

"हूँ।"

"जी, राजा जिस समय राजसिंहासन पर आ विराजता है, उसकी श्रेणी उत्कृष्ट हो जाती है। तब उसके सामने केवल न्याय होता है, जिसकी सहायता से वह अपनी प्रजा की गुत्थियों को सुलझा देता है।"

"अच्छा बाले, तू अब अपना प्रस्ताव उपस्थित कर," गर्व पूर्वक राज्योचित स्वर में उन्होंने आज्ञा दी। अब उन्हें अपनी

सत्ता का पूर्णतया ज्ञान हो चुका था।

"राजन्, आपकी राजसभा में सभी प्रकार के विद्वान् हैं परन्तु......।" नम्रतापूर्वक कहकर वह रुक सी गई।

"परन्तु क्या ?" गम्भीरतापूर्वक उन्होंने प्रश्न किया।

"एक विद्वान् की आवश्यकता है।"

"कैसे विद्वान् की ?"

"राजसी कलाकार की।"

"राजसी कलाकार की ?" विस्मयपूर्वक उन्होंने पूछा।

"जी।"

"मैं समझा नहीं।"

"ऐसा विद्वान् जो सभी कलाओं में दक्ष हो। उनका भली प्रकार मूल्य लगा सके और विशेषतः संगीत तथा कविता में उसकी रुचि हो।"

"परन्तु बाले, मुझे कविता तथा संगीत दोनों से प्रेम नहीं एवं न मैं उनकी कमी का अनुभव ही करता हूँ।"

"इससे क्या ? इसके बिना तो राजसभा सूनी सी प्रतीत होती है।"

"कारण ?"

"राजन्, प्रत्येक राजसभा को सुशोभित करने वाले रत्नों में गायक तथा कवि अपना विशेष स्थान रखते हैं।"

"रखते होंगे।"

"परन्तु राजन्, राजा को अपनी प्रजा की रुचि पर चलना पड़ता है; फिर यह रुचि तो राज्य के लिये उचित तथा लाभ-दायक ही है।"

"महामन्त्री जी, तो क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?"

कहकर विजयसिंह ने उत्तर पाने के लिये अपना मुख उनकी ओर घुमा दिया।

"सत्य है कृपानिधान !" अपने स्थान पर खड़े होकर नम्रता-पूर्वक महामन्त्री ने अपनी सम्मति प्रकट की।

"तो क्या सारी प्रजा राजसी कलाकार की आवश्यकता को अनुभव करती है ?" गम्भीरतापूर्वक उन्होंने अपना मुख प्रजा की ओर घुमा दिया तथा एक ही निमिष में सारे सभासदों के मुख के भावों को पढ़ लेना चाहा।

"सत्य भगवन् !" एक स्वर में सबने उत्तर दिया।

"बाले, मैं तुम्हारे इस प्रस्ताव से अति प्रसन्न हूँ," प्रफुल्लित होकर उन्होंने कमला से कहा। उनके नेत्र प्रसन्नता से चमक रहे थे।

"धन्यवाद," कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसने उत्तर दिया।

"तो महामन्त्री जी, इसका प्रबन्ध कीजिए," उत्साहपूर्वक उनको आदेश देते हुए विजयसिंह बोले।

"जो आज्ञा कृपानिधान" कहकर महामन्त्री अपने स्थान पर बैठ गये।

"और हां महामन्त्री जी, इस बात का ध्यान रहे कि वह कलाकार ऐसा हो कि जिससे संसार का कोई भी कलाकार, विशेषतः कवि अथवा गायक होड़ न कर सके। वह मेरे हृदय में ऐसी जागृति उत्पन्न कर दे जिसके द्वारा मैं दोनों कलाओं के मूल्य को भली प्रकार समझ सकूं।"

"कहीं कभी कोई कला का भी मूल्य लगा सका है ?" नम्रता-पूर्वक कमला ने प्रश्न किया।

"कविता तथा संगीत से कला का क्या सम्बन्ध ?" विस्मय पूर्वक विजयसिंह ने प्रश्न किया।

"तो फिर आपके मतानुसार चित्रकारी भी कोई कला नहीं। आपने व्यर्थ में मुझे उसे कला समझकर सिखलाया," कुछ उत्तेजित होकर वह बोली।

"अब समझा," गरदन हिलाते हुए उन्होंने अपनी सहमति प्रकट की।

"संगीत तथा कविता दो कलाएं हैं," स्थिर नेत्रों से उनके मुख की ओर देखती हुई वह बोली और चुपचाप अपने नियत स्थान पर बैठ गई।

विजयसिंह स्तब्धतापूर्वक स्थिर नेत्रों से सामने देख रहे थे। शायद वह अपनी कमी का अनुभव कर रहे थे।

"तो कृपानिधान, इस कलाकार की खोज में मुझे कब प्रस्थान करने की आज्ञा है? क्या आज ही?" अपने स्थान पर खड़े हो कर महामन्त्री ने नम्रतापूर्वक प्रश्न किया।

"हां महामन्त्री जी, आज ही। कारण कि मैं ऐसे कलाकार को शीघ्र से शीघ्र अपनी सभा में देखना चाहता हूँ।" संभलकर उन्होंने अपनी अभिलाषा प्रकट कर दी।

"जो आज्ञा कृपानिधान!" आदरपूर्वक महामन्त्री ने उच्चारण किया।

इसके उपरान्त सभा विसर्जित हुई। महामन्त्री थोड़े से राज-कर्मचारियों को अपने साथ लेकर राजसी कलाकार की खोज में चल दिये।

राजभवन में पहुंचकर विजयसिंह ने कमलाकुँवारी से मुस्कराकर केवल इतना भर कहा, "पुत्री, आज मुझे तूने मेरी एक कमी का अनुभव कराया है।"

"पिता जी!"

"पिता जी ! अब राजन् क्यों नहीं कहती मुझे !" हँसते हुए सजल नेत्रों से वह बोले । बड़ा प्रेम भरा था उनके इस वाक्य में ।

"पिता जी, यह अपना राजभवन है, राजसभा थोड़े ही है," नीचे नेत्र किये हुए मुस्कराती हुई वह बोली । "रहा कमी के विषय में । वह ईश्वर की इच्छा थी ।"

"कह नहीं सकता किसकी इच्छा थी । हाँ, तुम्हारा कथन अवश्य सत्य था ।" उन्होंने अपनी सम्मति प्रकट की ।

"पिता जी, परमात्मा की इच्छा के बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता । वह जैसा चाहता है कराता है," कहकर वह हँस पड़ी ।

"बड़ी अल्हड़ है तू । कहती है परमात्मा जो चाहता है कराता है । कर्म करें हम, नाम लगावें उसका । वाह रे तेरा न्याय ! अच्छा कमल, यदि तू कोई अनुचित कार्य कर बैठे तो उसमें भी ईश्वर का दोष होगा ?" हंसते हुए वह प्रश्न कर बैठे ।

"है तो अवश्य पिता जी, परन्तु उस अनुचित कार्य के करने से पूर्व वह मानव में यह सन्देह अवश्य उत्पन्न कर देगा कि यह कार्य करना उचित है अथवा नहीं ," तर्क करती हुई वह उत्तर दे बैठी ।

"परन्तु अधिकतर मनुष्य अनुचित कार्य करने में नहीं हिचकते । तो फिर उसमें ईश्वर का क्या दोष ? वह तो उसके लिये पूर्व ही भावनायें उत्पन्न कर सत्य-मार्ग प्रदर्शित कर देता है । इससे तो भली प्रकार स्पष्ट होगया कि बुरे कर्म वह नहीं कराता । उसका तो मत है कि 'अच्छे कर्म करो । लोक-परलोक, बनाओ । परन्तु यह मनुष्य ही है जो प्रलोभन में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर बैठता है ," एक साँस में उन्होंने इतना व्याख्यान दे डाला ।

"पिता जी, फिर भी बुरे कर्मों के करवाने में उसका हाथ रहता ही है, उसकी इच्छा अवश्य रहती है। नहीं तो वह इन प्रलोभनों की सृष्टि क्यों करता ?" विनयपूर्वक उसने प्रश्न किया।

"प्रलोभन ही तो मनुष्य की कसौटी हैं। यदि उसने केवल सरलता ही बनाई होती तो फिर सारे व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर देवता ही न बन जाते," कहकर वह हंस पड़े।

"पिता जी, प्रायः मैं ऐसे ही विचारों में उलझकर कुछ निर्णय नहीं कर पाती। यह पाप-पुण्य, मुक्ति-मोक्ष मुझे ढकोसले से प्रतीत होने लगे हैं," ऊबती हुई वह बोली।

"पुत्री, व्यर्थ में इस प्रकार अपने मस्तिष्क को परेशानी में न डाला कर। बस यही समझ ले कि पाप-पुण्य से ही हमारा जीवन बना है। कर्मों से मुक्ति-मोक्ष प्राप्त होते हैं। हमें सदैव अच्छे कर्म करके अपना जीवन सफल बनाना चाहिये," सान्त्वनापूर्ण शब्दों में वह बोले।

"अजी, आप भी राजसी कलाकार की अभी से चिन्ता करने लगे। सभी कार्य भुला बैठे। जब आजायेगा तभी उसकी चिन्ता की जायेगी। उठिये, वस्त्रादि परिवर्तित कर......।" यह रानी थीं।

"हां पिता जी, सन्ध्या हो रही है। हम लोग व्यर्थ के तर्क में इतना समय नष्ट कर बैठे," हंसकर रानी की बात काटते हुए कमला ने कहा।

उसके पश्चात् विजयसिंह अपने नियमित कार्यों में व्यस्त हो गये।

[२]

"शेखर!" कुछ उच्च स्वर में उच्चारण कर महामन्त्री

ने अपने बराबर वाले कर्मचारी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। वह अपने अन्य कर्मचारियों के साथ आगे बढ़ते चले जा रहे थे। सबके घोड़ों की टापें एक स्वर में गूँज रही थीं। नेत्र सब के चारों ओर के घरों तथा अट्टालिकाओं पर टिके हुए थे।

"आज्ञा महामन्त्रिन्!" चौंककर परन्तु नम्रतापूर्वक शेखर ने कहा।

"आज्ञा-वाज्ञा की कोई बात नहीं, शेखर! बस चिन्ता इस बात की है कि राजसी कलाकार की पदवी प्राप्त करने वाला व्यक्ति कोई मेरी दृष्टि में अभी तक नहीं आया," कहकर उन्होंने ठण्डी सांस छोड़ दी। मानों वह ढूंढते-ढूंढते हिम्मत हार बैठे हों।

"हां महामन्त्रिन्, राजा की आज्ञा है कि कोई उसकी बराबरी न कर सके। कोई निराला व्यक्ति होना चाहिये," तिरस्कार के भाव में उसने कहा। उसको कुछ उत्तेजना हो आई थी।

"सबके ही हृदय में ऐसी अभिलाषायें होती हैं शेखर! सभी यह चाहते हैं कि जो वस्तु वे लें वह इतनी अच्छी हो कि उस प्रकार की कोई दूसरा व्यक्ति न प्राप्त कर सके। तुम्हीं बताओ, क्या तुम ऐसा नहीं चाहते?"

"चाहता क्यों नहीं?" कुछ उत्तेजित होकर वह बोला।

"तुममें अभी अल्हड़पन अधिक है। अपनी इस आदत को दूर करने का यत्न करो, अन्यथा हानि उठा बैठोगे। समझे," गम्भीरतापूर्वक उन्होंने उसे आदेश सा दिया।

"परन्तु महामन्त्रिन्, हम लोगों को अपने घर को छोड़े हुए चार मास व्यतीत हो चुके हैं। अभी तक उन महापुरुष के दर्शन तक न हुए," उसने कहा।

"फिर वही बचपन। अरे शेखर, मनुष्य को अपना साहस

इतनी जल्दी न खोना चाहिये। अपनी लगन में स्थिर रहना चाहिये। ऐसे ही यदि चार मास और व्यतीत हो जायें तो भी क्या चिन्ता? किसी महापुरुष की खोज में यदि जीवन भी समाप्त हो जाये तो क्या चिन्ता? सान्त्वनापूर्ण शब्दों में वह बोले।

"तो महामन्त्री जी, आपके कथन का सार यह हुआ कि राजसी कलाकार महापुरुष होगा," मुँह बनाकर वह कह बैठा। अन्य कर्मचारी स्तब्धतापूर्वक उन दोनों की बातें सुनते हुए उनके पीछे चले जा रहे थे।

"कलाकार महापुरुषों से भी उच्च होते हैं।"

"खूब दूर की कही आपने। मान ली मैंने। महामन्त्रिन्, कुछ सोचो तो सही वह आयेगा, सभा में बैठकर वेश्याओं की भांति राग अलापेगा। क्या यही महानता है उसकी?" घृणापूर्ण शब्दों में वह बोला। उसे कुछ रोष भी हो आया था।

"शेखर, तुम जरा बुद्धि की सहायता लेकर बात किया करो। कला का मूल्य कोई नहीं लगा सकता। उसको पाना कोई सरल कार्य नहीं। उसकी खोज में व्यक्ति अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं, परन्तु सफलता नहीं प्राप्त कर पाते," कुछ चिढ़कर वह बोले।

"सम्भव है आपका कथन सत्य हो, परन्तु मेरे हृदय से पूछिये तो यह सब ढकोसला है। किसी को थोड़ी भी कला आगई कि बस कह दिया कलाकार है। ऐसे तो मैं भी कलाकार हूँ। शस्त्र चलाना तथा घोड़ा चलाना मैं भली प्रकार जानता हूँ। यह भी तो कला है," वह बोला।

"जब तुम एक बात नहीं जानते तो व्यर्थ में उसका निरादर क्यों करते हो? इससे तुम्हें क्या प्राप्त हो जाता है? कलाकार

बनाया नहीं जाता। परमात्मा ही उसे कलाकार बनाकर संसार में भेजते हैं। समझे शेखर!" अब महामन्त्री को भी उस पर कुछ क्रोध हो आया था।

"महामन्त्रिन्, यदि ऐसा है तब तो आपको ऐसा कलाकार प्राप्त हो चुका," ऊबकर वह बोला।

"कभी किसी के साथ विश्वासघात नहीं करना चाहिये शेखर! यहां से चलकर हमें उस सर्वशक्तिमान् के सामने भी तो अपने कर्मों का ब्योरा देना है।"

"परन्तु महामन्त्रिन्, ईमानदार व्यक्ति इस संसार में कष्ट ही उठाते हैं," उसने टालने के लहजे में कहा।

"सच्चे मार्ग पर सदैव कष्ट ही मिलते हैं। यदि मनुष्य उनसे घबरा जाता है तो उसका जीवन दुःखमय बन जाता है। वह उस मार्ग से विचलित होकर अंधेरे खड्ड में गिर जाता है और फिर उसमें गिरता ही चला जाता है। प्रकाशित मार्ग फिर उसे नहीं प्राप्त हो सकता।"

"होगा महामन्त्रिन्, परन्तु मुझे ऐसी समस्यायें हल नहीं करनी हैं," खीझकर उसने कहा।

इतने में सहसा महामन्त्री ने अपने घोड़े की गति धीमी करते हुए कहा, "सुनो शेखर, कितने मधुर कण्ठ से कोई गा रहा है।"

"ईश्वर करे यही वह व्यक्ति हो जिसकी खोज में हम इतने समय से भटक रहे हैं," अभिलाषित हृदय से वह उत्सुकतापूर्वक बोला।

घोड़े धीमी गति से गायन के स्वर की ओर बढ़ा दिये गये। गाना अब भली प्रकार सुनाई दे रहा था। लगभग वह घर पचास

गज़ की दूरी पर रह गया होगा। उसकी छत पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि एक नवयुवक बैठा तन्मय होकर गा रहा है, सुरताल में—

उस पार न जाने क्या होगा ?
इस पार न जाने क्या होगा ?
यह जीवन है एक पहेली।
करता काल है हेरा-फेरी।
इस काल की हेरा-फेरी में—
हे प्रभो न जाने क्या होगा ?

गायन समाप्त हुआ। राजकर्मचारियों ने अपने घोड़े रोक लिये और उन पर से उतर पड़े। गद्‌गद्‌ कण्ठ से महामन्त्री ने कहा, "शेखर।"

"आज्ञा महामन्त्रिन् ?" आदरपूर्वक वह बोला।

"शायद तुम्हारे शब्द सत्य हुए प्रतीत होते हैं। जाकर उस व्यक्ति को बुला तो लाओ। देखो देर न करना," प्रफुल्लित हृदय से मृदु मुस्कान प्रदर्शित करते हुए उन्होंने आज्ञा दी।

"जो आज्ञा" कहकर शेखर ने उस ओर प्रस्थान किया। घर के द्वार पर पहुंचकर अभी वह पुकारने ही जा रहा था कि किसी स्त्री के ये कर्कश शब्द उसके कान में पड़े, "कवि जी, आपकी कला से तो हम सबों को भूखों शरीर त्याग देना पड़ेगा। अपनी इस कला की बजाय राम-राम कहकर कहीं से पेट भरने का प्रबन्ध कीजिए। हमें इससे कोई रुचि नहीं।"

उसने कुछ संभल कर पुकारा, "कोई है ?"

"कौन है ?" मृदु स्वर में किसी ने छत पर से प्रश्न किया।

"तनिक नीचे आने का कष्ट कीजिए," ऊपर उसी की ओर

दृष्टि करके वह बोला।

"अभी आया," कहकर वह तत्काल ही शेखर के सम्मुख आ उपस्थित हुआ। शेखर ने भली प्रकार देखा कि वह एक सरल हृदय एवं स्वच्छ वस्त्रों वाला नवयुवक था।

"नमस्ते, कहिये कैसे कष्ट किया आपने ?" नम्रतापूर्वक आदर भरे शब्दों में उस नवयुवक ने प्रश्न किया।

"तो क्या अभी आप ही छत पर बैठे......?" अटक अटक कर शेखर ने प्रश्न सा किया।

"जी, मैं ही था," मृदु स्वर में उसने कहा।

"तो वह देखिये, मेरे महामन्त्री अन्य कर्मचारियों के साथ वहां खड़े हैं। वह आपसे कुछ निवेदन करना चाहते हैं। क्या आप वहां तक चलने का कष्ट उठा सकेंगे," उसने संकेत करते हुए प्रार्थना सी की। "आपको कष्ट तो अवश्य होगा, परन्तु...।"

"कष्ट की कोई बात नहीं। चलिए," मुस्कराकर उसने कहा।

"चलिए" कहने के उपरान्त शेखर उस नवयुवक को अपने साथ लेकर महामन्त्री के सामने जा खड़ा हुआ। उसे देखकर वह बोले, "तो क्या आप ही वह महापुरुष हैं जो अभी बड़ी मधुरता से अपनी कविता का पाठ कर रहे थे ?"

"जी, परन्तु यह आपने कैसे समझ लिया कि वह कविता थी ?" नम्रतापूर्वक नवयुवक कलाकार ने प्रश्न किया।

"अपनी इस तुच्छ बुद्धि द्वारा। क्या आप मेरे राज्य में चलने का कष्ट उठा सकेंगे ?" आदरणीय शब्दों में उन्होंने याचना सी की।

"कारण ?" गम्भीरतापूर्वक नवयुवक ने पूछा।

"हमारे राजा को एक कलाकार की आवश्यकता है।"

"परन्तु महाशय, मेरे ऐसे भाग्य कहां जो आप जैसे महापुरुषों के यहां रह सकूं, फिर मैं कलाकार हूं ही कब ?" मुस्कराकर लज्जा भरे नेत्रों से ज़मीन की ओर देखते हुए उसने उत्तर दिया।

"योग्य पुरुष अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं किया करते। उनकी योग्यता तो उनके स्वभाव से विदित कर ली जाती है।"

"आपका कथन सत्य है, श्रीमान्; परन्तु......"

"बस, आप अपनी सम्मति भर प्रकट कर दीजिए। मैं सब प्रबन्ध कर लूँगा," मुस्कराकर उन्होंने बात काट दी।

"अच्छी बात है तो मैं अपनी गृहिणी की सम्मति लेकर अभी बताये देता हूँ।"

"जैसी आपकी इच्छा। हम सब समीप ही अपने तम्बू लगाते हैं।"

"अच्छा," कहकर प्रफुल्लित हृदय से वह अपने घर पहुँचा। सामने ही उसकी गृहिणी बैठी थी। जाते ही गद्गद् कण्ठ से उसने कहा, "सुनती हो ?"

"क्या है ?" जरा निकट आकर उसने पूछा।

"आनन्दगढ़ के राजा ने मुझे आमन्त्रित किया है," उत्साहित होकर उसने कहा। मारे खुशी के उसके मुख से भली प्रकार शब्द भी नहीं निकल रहे थे।

"किस लिए ?" व्यंग भरे नेत्रों से हाथ नचाकर वह प्रश्न कर बैठी।

"कर्मचारी कहते थे कि उनके शासक को एक कलाकार की आवश्यकता है," उसने उत्तर में कहा।

"राजा तुम्हारे लिए अपने कर्मचारी भेजेंगे। वह भी तुम्हें

बुलाने के लिए ? अजी, झूठ बोलते हो, तुम्हें.....” उत्तेजना मिश्रित स्वर में मुँह बनाकर वह बोली।

“झूठ बोलने का मेरा स्वभाव नहीं है,” उसने बीच ही में बात काटकर कहा।

“तो फिर ?” चंचलता से नेत्र नचाकर वह प्रश्न कर बैठी।

“अजी, जो व्यक्ति मुझे कुछ क्षण पूर्व पुकार रहा था वह ही तो राजकर्मचारी था। वह मुझे महामन्त्री के पास ले गया था।”

“अच्छा, तो तुम्हें स्वयं महामन्त्री लेने के लिये आये हैं। अजी, अभी क्या करोगे जाकर ? तभी जाना जब रानी भी स्वयं तुम्हें लेने आवें,” व्यंगपूर्ण शब्दों में यह कहकर वह खिलखिला-कर हंस दी।

“नहीं विश्वास करतीं तो सामने के मैदान में देख लो न। उन सबके तम्बू लगे दीख पड़ेंगे। अभी तुम्हारी सम्मति प्राप्त कर उन्हें उत्तर देना है,” धीरे से वह बोला।

“तो फिर तनिक ठहरो। मैं स्वयं देख लूं तब अपनी राय प्रकट करूंगी। अजी, कलाकारों की बातें कुछ तरंग से कम थोड़े ही होती हैं।” वह इतना कहकर इठलाती हुई झरोखे की ओर चल दी।

“अच्छी बात है। तो मैं भी तब तक यहीं बैठा रहूंगा।” एक ठण्डी सांस छोड़ते हुए वह वहीं बैठ गया।

झरोखे से देखकर कलाकार की स्त्री मालती ने अपना भ्रम दूर किया। सामने के मैदान में चार-पांच तम्बू तने थे। बीस-बाईस घोड़े वृक्षों से बंधे थे। वहां से प्रसन्न चित्त झूमती हुई वह अपने पति के समीप ही खड़ी होकर बोली, “हां जी !”

"भ्रम दूर हो गया तुम्हारा ?" गम्भीरतापूर्वक कलाकार ने अपनी आंखें मालती के मुख पर गड़ा दीं।

"हां, हमारे अहोभाग्य! जाओ जाकर अपनी स्वीकृति दे दो। ईश्वर करे आप राजसी कलाकार नियुक्त हो जायें। घर की है-है-खै-खै तथा दुख-दरिद्र दूर तो हों। लक्ष्मी की अप्रसन्नता के कारण कोई हमको नहीं पूछता। सब तिरस्कृत नेत्रों से देखते हैं," कहकर उसने ठण्डी सांस छोड़ दी।

"तो फिर जाऊं क्या ?" प्रफुल्लित होकर उसने आज्ञा चाही।

"निश्चय" गद्गद् कण्ठ से मुस्कराकर मालती ने अपनी स्वीकृति दे दी।

"यदि वह मुझे अभी ले जायें तो तुम बाद में चली आना," कहता हुआ वह चलने के लिए उद्यत हुआ।

"वाह जी, अच्छी कही तुमने।"

"क्या ?" विस्मयपूर्वक उसने पूछा।

"अजी, तुम्हारे बिना मैं कैसे रह सकती हूँ ?" मुंह बनाकर वह बोली।

"तो फिर चलने का प्रबन्ध करो। मैं अपनी स्वीकृति देकर आता हूँ," कहता हुआ वह घर से बाहर निकल गया।

मालती कहती ही रह गई, "अजी, महामन्त्री से कह देना कि कल चलेंगे। आज का मुहूर्त अच्छा नहीं। फिर रात्रि भी तो हो रही है।"

[२]

महामन्त्री अपने कर्मचारियों में बैठे राजसी कलाकार के विषय में भांति भांति का वार्तालाप कर रहे थे। इतने में वह उनके

सामने जा खड़ा हुआ। उन्होंने सादर बैठने का संकेत करते हुए कहा, "आइये, सब आप ही की बाट जोह रहे थे।"

"धन्यवाद" कहकर वह उनके समीप ही बैठ गया।

"कहिये, क्या निश्चय किया है?" मुस्कराकर उन्होंने प्रश्न किया, एवं अपने आशा भरे नेत्रों से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

"मुझे स्वीकार है," नम्रतापूर्वक उसने अपनी सम्मति दे दी।

"तो फिर अब विलम्ब किस बात का? हम सबको तत्काल ही यहां से चल देना चाहिये," शेखर ने तुरन्त ही अपना प्रस्ताव उपस्थित कर दिया।

"हां हां शेखर, रात्रि भर चलकर हम कल सायंकाल तक अपने राज्य में पहुंच जायेंगे। व्यर्थ में समय नष्ट करने से क्या लाभ?" महामन्त्री ने अपनी इच्छा प्रकट की।

"परन्तु कृपालु, मैं आज न चल सकूँगा," नम्रतापूर्वक कलाकार ने निवेदन किया।

"कारण?" विस्मय से महामन्त्री ने पूछा।

"सर्वप्रथम आज का मुहूर्त अच्छा नहीं। द्वितीय मेरे साथ मेरा परिवार चलेगा। फिर रात्रि भर ही की तो बात है," ज़रा गम्भीरता से उसने कहा।

"तो कल प्रातः ही सही," वह हंसकर बोले।

"ऐसा ही होगा," नम्रतापूर्वक वह बोला।

"तो कल निश्चय ही चल देना होगा।"

"नमस्ते" करके वह अपने घर की ओर चलने के लिये घूमा।

"अच्छी बात है। नमस्ते" मानों उन्होंने उसे जाने की

आज्ञा दे दी। उन्होंने शान्ति की सांस लेते हुए कहा, "शेखर, चलो परिश्रम सफल हुआ। भोजनादि से निवृत्त हो विश्राम करो।"

× × × × × ×

उसके चौथे दिन—

आनन्दगढ़ की राज-सभा नित्य की भांति जुटी हुई थी। विजयसिंह अपनी प्रजा की दुख-दर्द की बातें सदा की भांति भली प्रकार सुनकर उचित न्याय-व्यवस्था दे रहे थे। सहसा सबकी दृष्टि पीछे से पदार्पण करते हुए व्यक्तियों की ओर घूम गई। देखा, महामन्त्री जी एक साधारण वस्त्र वाले व्यक्ति के साथ वहां आरहे हैं। आते ही वह विजयसिंह के सामने जाकर खड़े होगये, एवं हाथ जोड़कर आदरपूर्ण शब्दों में कह किया, "प्रणाम, पृथ्वीवल्लभ।"

"आये तो महामन्त्री जी! मैं तो समझा था शायद......," गम्भीरतापूर्वक उन्होंने ताने भरे शब्दों में कहा। वह कुछ उत्तेजित से हो उठे थे।

"राजन्, कोई मैं हाथ पर हाथ रखे थोड़े ही बैठा था। न जाने कहां-कहां तथा कितने-कितने स्थानों के विद्वानों का निरीक्षण करना पड़ा। तब कहीं जाकर इनसे साक्षात्कार हुआ," नम्रता-पूर्वक महामन्त्री ने बात काट दी। उन्हें भी कुछ रोष हो आया था।

"अर्थात्?" गम्भीरतापूर्वक विजयसिंह ने प्रश्न किया। उनकी भृकुटी चढ़ गई थी।

"यही कि मेरी दृष्टि में आप ही वह विद्वान् कलाकार हैं जिनकी खोज के लिए आपकी आज्ञा थी," कलाकार की ओर संकेत करते हुए वह बोले। उनके इस उत्तर में उत्तेजना भरी हुई थी।

"अच्छा," व्यंग भरे शब्द में उन्होंने कहा।

सब टकटकी बांधे उस नवयुवक की ओर देख रहे थे। वह भी स्तब्धतापूर्वक मूर्तिवत् खड़ा अपने कुर्ते की एक ओर की किनारी मोड़ रहा था। उसके लज्जा भरे नेत्र सामने थे।

"कृपानिधान !" नम्रतापूर्वक महामन्त्री ने उत्तर सा दिया, एवं वहां से प्रस्थान कर अपने नियत स्थान पर बैठ गये। अब नवयुवक कलाकार ही वहां अकेला खड़ा रह गया। उसके नेत्र लज्जावश नीचे थे और मुखाकृति उसकी अबोधता का प्रमाण दे रही थी।

"नवयुवक," गर्वपूर्वक राजसी शब्द में विजयसिंह ने उसको सम्बोधित किया, तथा अपने नेत्र उत्तर के लिए उस पर स्थिर किये।

"जी कृपानिधान ," क्षीण स्वर में वह बोला।

"तो तुम कविता तथा संगीत दोनों कलाओं का भली प्रकार ज्ञान रखते हो ?" गम्भीर मुद्रा से वह प्रश्न कर बैठे।

"जी ," दृढ़तापूर्वक उसने उत्तर दिया।

"तो क्या आप अपनी कला का प्रदर्शन कर सकेंगे इस समय ?" राजा ने कहा।

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य ," नम्रतापूर्वक कलाकार बोला।

"महामन्त्रिन्, इनको मध्य में स्थान दो जिससे सभी उनके स्वर को भली प्रकार सुन सकें ," राजा ने महामन्त्री को आदेश दिया।

"जो आज्ञा" कहकर महामन्त्री ने कलाकार को आदरपूर्वक उचित स्थान पर बिठा दिया। कमलाकुंवारी भी चित्रवत् अपने स्थान पर बैठी थी तथा कलाकार की अबोधता को देखकर भ्रम में

पड़ी सोच रही थी—'यह नवयुवक इस श्रेणी को प्राप्त भी कर सकेगा कि नहीं ?'

"हां कलाकार महोदय, अब आप अपनी दोनों कलाओं का प्रदर्शन करें," विजय ने अपनी अन्तिम आज्ञा सुनाई। सभी सभासद् संभलकर बैठ गए एवं ध्यान से कलाकार की ओर देखने लगे।

कलाकार ने भी एक बार चारों ओर अपनी दृष्टि फेंककर सभी के भाव पढ़ लिए, और फिर कोकिल कण्ठ से अपनी कविता सुनानी आरम्भ की :—

सारा जग माया बन्धन में—
बन्दी निरखा जाता है।
सभी के मन में अभिलाषाएं—
हैं अपना संसार बसाएं
कोई निज मन की चाहत में—
सरबस अपना खोता है। —सारा जग...
कोई धन–सम्पति पर सारा—
आदर अपना खोता है। —सारा जग...
यह संसार करम की भूमी,
जाग जाग क्यों सोता है ?
अरे संभल ! अभिमान न कर तू
क्यों नय्या, आज डुबोता है।
सारा जग माया बन्धन में
बन्दी निरखा जाता है।

सब तन्मय होकर उसकी मधुर स्वर-लहरी पर कान लगाये थे। ऐसा प्रतीत होता था मानों सभा में पत्थर की मूर्तियां रखी हों।

केवल उसमें दो सजीव प्राणी थे अर्थात् एक कलाकार और दूसरी कमलाकुंवारी। कलाकार गा रहा था और कमलाकुंवारी उसकी स्वर-लहरी के आधार पर चित्र बना रही थी

कविता समाप्त होते ही सबकी चेतना लौट आई और सहसा सबके मुख से निकल पड़ा, "क्या गायन समाप्त हो गया? बड़ा मधुर था। वाह-वाह!" फिर तत्काल ही सब उठ खड़े हुए और एक ही स्वर में अपनी अभिलाषा प्रकट की,—"राजन्, इन्हीं को राजसी कलाकार की उपाधि प्रदान कर उपयुक्त स्थान की पूर्ति की जाय।" महामन्त्री अपनी सफलता पर गर्व से मुस्करा रहे थे।

"हां पिता जी, इतनी संक्षिप्त कविता में कलाकार ने संसार का स्पष्ट चित्रण कर दिया। फिर इनको संगीत से पूर्ण रूप से प्रेम है तभी तो अपनी कविता को मधुर लय में सुनाकर सभी को प्रभावित कर दिया। देखिये, मैंने उसी के अनुकूल अपना यह चित्र तैयार कर लिया है," कहती हुई वह अपने स्थान से उठी और विजयसिंह के सामने अपना चित्र रखकर आदरपूर्वक एक ओर खड़ी हो गई।

विजयसिंह के नेत्र अभी उस नवयुवक पर स्थिर थे। अपने सामने चित्र देखकर चौंक से पड़े और उनके मुख से क्षीण स्वर में निकल ही तो गया, "यह क्या?"

"पिता जी, कलाकार की कविता का वास्तविक चित्रण," नम्रतापूर्वक कमलाकुंवारी ने समर्थन किया।

"ओह!" संभल कर वह उसकी ओर देखकर मुस्करा दिये। फिर चित्र का भली प्रकार निरीक्षण कर अपना निर्णय सुनाया, "नवयुवक, आज से तुम हमारे यहां राजसी कलाकार नियुक्त किये

जाते हो।"

"धन्यवाद," कलाकार ने अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

"महामन्त्रिन्," राजा ने महामन्त्री को सम्बोधित करके कहा।

"आज्ञा कीजिये," नम्रतापूर्वक महामन्त्री ने उत्तर दिया एवं अपने स्थान पर उठकर खड़े हो गये।

"कलाकार को इनके नियुक्त स्थान पर...।"

"जो आज्ञा," बात काटते हुए वह उस नवयुवक के पास पहुँचे तथा उससे आदरपूर्वक बोले, "उठिये कलाकार महोदय, आप अपने नियुक्त स्थान को ग्रहण कीजिए।"

वह खड़ा होगया तथा उनके साथ जाकर एक सुसज्जित कुर्सी पर बैठ गया। वह उनके (महामन्त्री के) निकट ही रखी थी। अब राजा ने प्रफुल्लित होकर अपनी दृष्टि चारों ओर फेंकी एवं गर्व से वक्षस्थल ऊंचा करके कहा, "उपस्थित महानुभाव, आज मेरी साध की पूर्ति हुई। मैं आज कलाकार को प्राप्त कर आनन्द से फूला नहीं समाता।"

"परन्तु पिता जी," क्षीण स्वर में अटक अटक कर कमला-कुंवारी बोली। उसके नेत्र लज्जा से झुके जारहे थे और मुख लाल हो रहा था।

"क्या?" राजा ने प्रश्न किया।

"यही कि कलाकार का पूर्ण परिचय तो अभी तक प्राप्त ही नहीं किया गया। यदि आज्ञा हो तो मैं ही प्राप्त कर लूँ।" उसने लजीली आकृति से अपने नेत्र उस नवयुवक की ओर उठाये। देखा। उसके मदभरे बड़े बड़े नेत्र भी कमला पर स्थिर थे। वह उसे उस दशा में देख और भी लजा गई।

"जैसी तेरी इच्छा, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं," मुस्करा कर उन्होंने कहा।

"इससे पूर्व, पिताजी, मेरा एक निवेदन है," लज्जावश अटक अटक कर वह बोली।

"अर्थात्?" गम्भीरतापूर्वक उन्होंने प्रश्न किया।

"पिताजी, मेरी हार्दिक अभिलाषा यह है कि कलाकार अपनी कविता इसी प्रकार संगीत के साथ सुनाया करें और मैं बैठकर उसी का भाव-चित्र बनाया करूं।"

"अच्छी बात है।"

"पिता जी, कहने को तो मैंने कह दिया कि मैं कलाकार का परिचय प्राप्त कर लूं, परन्तु साहस नहीं होता उससे वार्तालाप करने का," कहकर उसने अपना मुँह लज्जा से झुका लिया।

"कारण?" मुस्कराकर उन्होंने प्रश्न किया।

"पिता जी, अभी कलाकार मेरे लिये अनजाने हैं," और उसने दबे हुए नेत्रों से नवयुवक कलाकार की ओर एक बार फिर देखा। वह भी उसकी उस दशा पर मन ही मन मुस्करा रहा था।

"अच्छा, अच्छा, बैठ जा अपने स्थान पर। अनजाने हैं। मैं अभी परिचय कराये देता हूँ," प्रेम-मिश्रित स्वर में उन्होंने कहा। वह उसी प्रकार लज्जावनत हो बैठ गई।

विजयसिंह कलाकार की ओर आकृष्ट हुए और उससे गम्भीरतापूर्वक प्रश्न किया, "नवयुवक, अभी तक हम तुम्हारे परिचय से वंचित रहे। यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो......।"

"राजन्, मैंने क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है। मुझे सब लोग मोहन कहते हैं," नम्रतापूर्वक अपने स्थान पर खड़े होकर उसने अपना संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

"तुम्हारे अतिरिक्त कौन-कौन तुम्हारे कुटुम्ब में हैं?"

"ऐसे तो सभी हैं।"

"अर्थात्?"

"माता, पिता, भ्राता, भगिनी तथा पत्नी, पुत्र-आदि," सरलता से उसने कहा।

"उन सब के भरण-पोषण का भार तुम्हारे ही ऊपर है?"

"जी।"

"तो सभी कुटुम्बी तुम्हारे साथ आये होंगे?"

"नहीं, कृपानिधान।"

"तो फिर क्या तुम अकेले आये हो?"

"नहीं राजन्! मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी तथा पुत्र आये हैं।" लजाते हुए उसने कमला की ओर निहारा जो ध्यानपूर्वक उसके उत्तर को सुन रही थी। उसके नेत्र भी उसी के ओर लगे थे।

"यहां कहां रह रहे हो तुम?"

"आपके राजभवन के समीप।"

"हूं," कहकर उन्होंने अपनी गर्दन हिलाई, मानों कोई गूढ़ समस्या हल की हो।

"तब तो, पिताजी, बड़ा अच्छा हुआ," प्रफुल्लित होकर कमला बोल उठी। उसके उस वाक्य से भली प्रकार विदित हो रहा था कि उसकी दशा उस बालिका की भांति थी जिसने अपना मनभाया खिलौना प्राप्त कर लिया हो।

"क्या कमल?" भृकुटी चढ़ाकर उन्होंने उससे प्रश्न किया। कलाकार अब अपने स्थान पर बैठ गया था।

"यही कि कलाकार का घर भवन के समीप है।"

उन्होंने उसके अन्तिम वाक्य पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया,

प्रत्युत मोहन की ओर मुख घुमाकर अपनी अभिलाषा प्रकट की, "कलाकार, मेरी हार्दिक अभिलाषा यह है कि तुम्हारी कला चारों ओर इस प्रकार छा जाये जिस प्रकार चन्द्रमा का प्रकाश समस्त भूलोक को प्रकाशित करता है और अपने सामने किसी अन्य प्रकाश को नहीं टिकने देता। तुम्हारी कविता तथा संगीत भी ऐसे ही प्रसरित हों कि दूसरा कोई कवि तथा गायक तुमसे होड़ न कर सके।"

"प्रयत्न करूंगा राजन्," नम्रतापूर्वक अपने स्थान पर खड़े होकर मोहन ने उत्तर दिया।

"हां कलाकार, मैं तुम्हारी प्रतिभा देखकर तुम्हें उन्नति के शिखर पर चढ़ते देखना चाहता हूं।"

इतना कहकर वह सभा विसर्जन करने की आज्ञा देने जा रहे थे कि राजमन्दिर के पुजारी ने अपने स्थान पर खड़े होकर आदरपूर्वक निवेदन किया, "राजन्, यदि आपको आपत्ति न हो तो मैं...।"

"रुक क्यों गये, पुजारी जी, कह डालिये आप भी। आज मैं बड़ा प्रसन्न हूँ," प्रफुल्लित होकर वह बोले।

"यही कि कलाकार नित्य सायंकाल कम से कम एक भजन मन्दिर में गा दिया करें। देवदासी भी शायद इनकी मधुर स्वर लहरी पर नृत्य कर सके। कारण कि संगीत का सम्बन्ध नृत्य से भी है।"

"आपका यह प्रस्ताव मुझे भी रुचिकर प्रतीत हुआ। मैं भी उसमें आया करूंगा," कहकर वह उठ खड़े हुए एवं मोहन से कुछ कहने ही वाले थे कि पुजारी ने कृतज्ञतापूर्ण शब्दों में उच्चारण किया, "राजन्, आपकी इस कृपा के लिए कोटिशः धन्यवाद।"

"तुम्हें पुजारी जी के प्रस्ताव से कोई आपत्ति तो नहीं है ?" कलाकार की ओर देखकर विजयसिंह ने पूछा।

"नहीं, महाराज।"

"अच्छी बात है। चलो यह भी निश्चित हो गया।"

इसके उपरान्त सभा विसर्जित हुई और सब प्रसन्न चित्त अपने-अपने निवास-स्थानों की ओर चल दिए। कमला मोहन के साथ चल दी।

[४]

राजमन्दिर में—

राजमन्दिर में इससे पूर्व इतना उल्लास कभी न देखा गया था और न इतना समारोह ही। यदि कहीं मन्दिर में स्थान की कमी होती तो बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता। जनता एक पर एक टूटी पड़ती थी। कर्मचारी, जो प्रबन्ध के लिए नियत किये गये थे, उसे भली प्रकार बैठा रहे थे। स्त्री तथा पुरुष दोनों के लिए पृथक्-पृथक् प्रबन्ध था। सामने मूर्ति की कोठरी के द्वार के समीप लगभग साठ वर्ग गज भूमि पड़ी थी, जिसके एक ओर केवल राजसी कलाकार, कमलाकुँवारी, राणा विजयसिंह, महामन्त्री, पुजारी जी तथा अन्य दरबारियों के बैठने का स्थान था। मध्य की भूमि इस कारण छोड़ दी गयी थी कि देवदासी उतने भाग में प्रभु की मूर्ति के सामने सरलतापूर्वक नृत्य कर सके, यानी इस भाग को सभी व्यक्ति भली प्रकार देख सकते थे। मन्दिर में आज से पूर्व तो शायद ही दस व्यक्ति एक साथ एकत्रित होकर बैठे हों एवं भजन-कीर्तन सुना हो। परन्तु आज ! आज उनका राजसी कलाकार अपना मधुर गान सुनायेगा और देवदासी उस पर नृत्य करेगी। यही प्रमुख आकर्षण जनता के आने का था।

उस समय सायंकाल के सात बज चुके थे। सूर्यदेव विश्राम की तैयारी में थे। निशादेवी अपने आगमन की सूचना दे रही थी। राज-मन्दिर में उपस्थित जनता अधीरतापूर्वक आरती की बाट जोह रही थी। यह विलम्ब इसलिए हो रहा था कि राणा विजयसिंह तथा उनकी महारानी अभी तक न आ पाये थे। साढ़े सात बजे के लगभग उन दोनों ने वहां पदार्पण किया। महारानी स्त्रियों के भाग में जाकर अपने नियत स्थान पर बैठ गईं और विजयसिंह अपने नियत स्थान पर। दर्शकों की अधीरता और भी अधिक बढ़ी। द्वार पर लटकी हुई घड़ी ने 'टन्-टन्' के शब्द से साढ़े सात बजने की सूचना दे दी। उधर राणा जी ने भी मृदु स्वर में आज्ञा दी, "तो अब विलम्ब किस बात का। कलाकार छेड़ो न अपनी मधुर तान!"

"जो आज्ञा," मृदु स्वर में उसने उत्तर दिया तथा गायन आरम्भ किया। मन्द स्वरों में बाजे बज उठे। देवदासी ने उठ कर नृत्य करना आरम्भ कर दिया। श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो सुन रहे थे। वह मधुर स्वर में गा रहा था:—

'ओ कान्हा, मोरे उर बिच रहना,
मैं तो जाऊंगा तुम पै वारी!
भटके तुम बिन मोरी नज़रिया
बाट तकूँ तोरी हर पहेरिया
अइयो ओ कान्हा सुनइयो बंसुरी
ओ कान्हा मोरी इतनी अरज सुनना
मैं तो जाऊंगा तुम पै वारी!
ओ कान्हा मोरे उर...!

माया में भटकत मोरा मनुवा
आन मिलो अब मोरे सजनुवा
प्रभु मोरे मन – मन्दिर बसना
मैं तो जाऊंगा तुम पै वारी !
ओ कान्हा मोरे उर...!
सुनियो कान्हा अरज हमारी
तड़पे तुम बिन जीभ हमारी
प्रभु मोरे, मुझमें आ रमना
भूल जाय यह दुनियादारी !
मैं तो जाऊंगा तुम पै वारी !!
ओ कान्हा मोरे उर बिच रहना !
मैं तो जाऊंगा तुम पै वारी !!

देवदासी कलाकार की प्रत्येक पंक्ति को अपने नृत्य के भावों में प्रदर्शित कर रही थी। जन-समूह मस्त हो झूम रहा था। कलाकार तन्मय हो अपने कोकिल-कण्ठ से गा रहा था और कमलाकुँवारी उसकी कला तथा अबोधता पर मुग्ध थी।

जैसे ही गायन समाप्त हुआ देवदासी के पैर रुक गये। उसने राधाकृष्ण की मूर्ति के सामने दण्डवत् किया और जैसे ही घूमकर पीछे देखा तो उसके नेत्र कलाकार के नेत्रों से जा टकराये। वह सिहर उठी और उसके शरीर में विद्युत-सी दौड़ गयी। वह संभलकर अपने स्थान पर बैठ गई। सबने गद्गद् कण्ठ से एक स्वर में कहा, "युग-युग जीयो, कलाकार जी!"

"पुजारी जी, अब नित्य प्रति इसी प्रकार भजन-कीर्तन हुआ करेगा। मैं भी आया करूंगा," विजयसिंह ने अपनी इच्छा प्रकट की।

"अच्छी बात है, राजन्! ऐसे ही समारोह के साथ तो इस

का आनन्द आता है। अभी तक केवल मैं अपने बेसुरे कण्ठ से किसी प्रकार गाकर रस्म अदा किया करता था। देवदासी भी मास में तीन चार बार आई तो आई, नहीं तो घण्टा-शङ्ख बजा कर भगवान् की आरती कर दी जाती थी। दस ग्यारह आये हुए व्यक्ति भी चुपके-चुपके खिसक जाते थे। कोई रस प्रतीत नहीं होता था।"

"इसीलिए तो भगवान् ने कृपा कर कलाकार को हमारे पास भेज दिया है। अब पुजारी जी देखियेगा कैसा आनन्द रहता है। कलाकार अपने भजनों से ऐसे भाव उत्पन्न कर देंगे कि नास्तिकों के हृदय में भी ईश्वर-प्रेम की लहर दौड़ जायगी," मुस्कराकर कमला ने अपनी सम्मति प्रकट की।

"हां पुत्री, आज के लक्षणों से तो ऐसा ही प्रतीत होता है," कहकर पुजारी जी ने सन्तोष से ठण्डी सांस ली।

कलाकार की प्रशंसा सुनकर देवदासी के हृदय में कलाकार के प्रति एक मूक प्रेम-भावना जाग्रत हो गई। वह कनखियों से उसकी मंजुल मूर्ति को निर्निमेष हो देख रही थी। वह कृष्ण की मूर्ति के सम्मुख एकाग्र चित्त बैठी थी। नौ बजे के लगभग भगवान् का प्रसाद प्राप्त करके सब अपने अपने घरों को चल दिये, और कमला भी मोहन के साथ उसके घर को चल पड़ी।

[५]

घर के द्वार पर कलाकार का रथ रुका। उस पर से मोहन तथा कमला दोनों उतर पड़े। मोहन ने द्वार पर उच्च स्वर से पुकारा, "निरञ्जन!"

"कौन?" भीतर से किसी स्त्री ने प्रश्न किया।

"मैं हूं, मालती," मोहन ने उत्तर दिया।

"आई। आज तो तुमने बड़ी देर कर दी," कहते हुए उस स्त्री ने द्वार खोल दिये। वह कलाकार की सहधर्मिणी थी।

"हां मालती, आज तो दिन भर मेरी परीक्षा ली गई थी," कहते हुए उसने कमला के साथ घर के भीतर प्रवेश किया।

मालती भी उन दोनों के पीछे पीछे भ्रमयुक्त हृदय तथा आश्चर्य भरे नेत्रों से कमला की ओर निहारती हुई चल रही थी।

भीतर दालान में पहुंचकर मोहन ने पास रखी कुर्सी की ओर संकेत करके सत्कारपूर्वक शब्दों में कमला से कहा, "बैठिये।"

"तो आप ही आपकी पत्नी हैं, क्यों कलाकार जी?" कुर्सी पर बैठती हुई कमला प्रश्न-सा कर बैठी।

"जी," सरलता से मोहन ने उत्तर दिया।

"कलाकार जी, आपका पुत्र नहीं दीख पड़ता," प्रश्नसूचक दृष्टि से चारों ओर देखती हुई कमला बोली।

"वह क्या रसोईघर के समीप बैठा खेल रहा है," मुस्करा कर उसने उंगली से संकेत किया।

मालती के हृदय में उनकी इस प्रकार बातें सुन-सुनकर बड़ा द्वन्द्व हो रहा था। वह आश्चर्य-चकित होकर स्थिर नेत्रों से कमला की ओर देख रही थी, एवं विचार रही थी कि यह सुन्दरी उसके स्वामी के साथ कौन है, क्यों आई है? क्या इसी प्रकार आज की भांति दिन दिन भर ये दोनों साथ ही रहेंगे? अन्त में जब उसके धैर्य का बांध टूटने लगा तो अटक अटककर कमला की ओर संकेत कर वह पूछ ही तो बैठी, "क्यों स्वामी, आपका परि......?"

"हां मालती, मैं तो तुमसे इनका परिचय कराना भूल ही गया। आप राज-पुत्री हैं।" मुस्कराकर उसने उत्तर दिया और

मालती के मुख पर दौड़ती हुई लाली को देखने लगा ।

मालती ने भी अब अपना परिचय हुआ देखकर अपने नेत्र कमला की ओर घुमाये और आदर से अपने हाथ जोड़कर बोली, "नमस्ते, राजकुमारी जी !"

"नमस्ते ," नम्रतापूर्वक कमला ने भी उसका अभिवादन किया ।

"आपका परिचय प्राप्त कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ," मुस्करा कर मालती बोली । अब उसके हृदय का द्वन्द्व पूर्व से आधा कम हो गया था ।

"धन्यवाद ," नम्रतापूर्वक कमला ने उत्तर दिया ।

"तो स्वामी, क्या राजकुमारी जी का विवाह हो गया ?" मोहन से मालती का यह दूसरा प्रश्न था ।

"ऊंहुँ !" लज्जा भरे नेत्रों से कमला बीच ही में बोल पड़ी । लज्जा की लालिमा उसके मुख पर दौड़ गई ।

"अरे !" मुख पर उंगली रखकर मालती ने आश्चर्य प्रकट करते हुए उसी स्वर में प्रश्न किया, "आपकी आयु ?"

"अठारह वर्ष ।" लजाती हुई कमला बोली ।

"अठारह वर्ष ! और अविवाहिता !" आश्चर्यपूर्वक बड़े-बड़े नेत्र निकाल कर मालती बोल पड़ी । "आश्चर्य !"

कमला निरुत्तर थी । एक कोने में खड़ी वह स्तब्धतापूर्वक अपनी साड़ी का किनारा दाब रही थी । लज्जा ने अब अपने पूर्ण वेग से उस पर आक्रमण कर दिया था । वह उसी के वशीभूत होकर अपनी निगाह नीची किये हुए थी । उसमें अब इतना साहस न था कि मालती की ओर एक बार और देख सके ।

"हां कुमारी जी, मरण तो निर्धनों तथा कम आय वालों का है

जिनकी कन्यायें जैसे ही किशोरावस्था के द्वार पर पहुंचती हैं वैसे ही संसारी उङ्गलियां उठाना आरम्भ कर देते हैं—'अरे! अमुक व्यक्ति की कन्या नवयुवती हो गई है। उसके विवाह की चिन्ता नहीं। कब तक घर में बिठाये रखेगा?' —वह उनकी विवशता की ओर ध्यान नहीं देते। उन्हें अपना जीवन व्यतीत करना दूभर सा हो जाता है। वाह रे धन! तुझ में बड़ी शक्ति है। तू असम्भव को सम्भव बना देता है। तेरे वशीभूत व्यक्ति मनुष्यत्व खोकर भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं; पूजे जाते हैं। संसार उन पर टीका-टिप्पणी नहीं कर सकता, चाहे उनकी कन्यायें कितने ही वर्ष तक अविवाहित क्यों न बैठी रहें?" कहकर मालती ने वेदनाभरी ठण्डी सांस छोड़ दी।

"मालती, अब समय अधिक हुआ चाहता है। राजकुमारी जी के लिये कुछ जलपान का प्रबन्ध तो कर दो। व्याख्यान तो फिर होते रहेंगे," मोहन ने उसकी (मालती की) व्यथित मुद्रा को भंग करने के विचार से कहा।

"अरे हां! इतना विलम्ब कर दिया। अजी तुम भी बस यों ही हो। मैं भूल गई थी तो तुम्हीं ने याद करा दिया होता। क्या सोचती होंगी कुमारी जी," मुँह बनाकर तथा लज्जा भरे नेत्रों से इधर-उधर देखती हुई वह उठ खड़ी हुई।

"वाह, इसकी क्या आवश्यकता है। अभी जाकर भोजन तो करना ही है," मुस्कराकर कमला बोली।

"आपने भी खूब कहा। पहले पहल मेरे यहां पधारीं और बिना मुँह मीठा किये चली जायें। यह नहीं हो सकता," मुस्कराते हुए मोहन ने तर्क-सा किया।

कमला कुछ न बोली। इतने में मालती एक तश्तरी में

कुछ जलपान की सामग्री ले आई।

"और मालती, कुमारी जी एक सफल चित्रकार भी हैं," कलाकार ने कहा।

"तब तो यह भी आपकी ही भांति सनकी होंगी," हंसकर मालती बोली।

कमला हतप्रभ हो दबे नेत्रों से मोहन की ओर देख रही थी।

"चलो, यह भी अच्छा हुआ," चंचल नेत्रों से कमला की ओर देखती हुई मालती बोली।

"क्या कहा?" विस्मयपूर्वक मोहन ने प्रश्न किया।

"यही कि कवि को चित्र से......।"

"ईश्वर आपके शब्द सत्य करे," कमला ने लजाते हुए बात काट दी। वह अब उत्साहित हृदय से मुस्करा सी रही थी।

"तो राजकुमारी जी, क्या आप मेरे निरञ्जन का एक सुन्दर सा चित्र बना देंगी?" संकोच मिश्रित शब्दों में मालती ने पूछा।

"अवश्य, अवश्य। अरे यह भी कोई बात है," हंसकर कमला ने उत्तर दिया। "परन्तु देखिए, कलाकार जी को बैठकर बाल्यकाल पर कुछ सुनाना पड़ेगा, चाहे कविता हो, चाहे साधारण गायन।"

"हां, हां, क्यों न सुनाऊंगा?" मुस्कराकर मोहन बोला।

"अच्छी बात है। तो देखिए, कलाकार जी, ऐसा कीजिए कि कल से तो आप अपने कार्य का श्रीगणेश कर ही दीजिए। आप अपने कोकिल-कण्ठ से कविता का मधुर गायन किया करें। मैं उसी के आधार पर चित्र चित्रित किया करूंगी। प्रकृतिक दृश्यों से मुझे बड़ा प्रेम है। आप मेरी वाटिका में बैठकर किसी दृश्य का वर्णन आरम्भ कर दीजिएगा। मैं उसी पर चित्र खींचना आरम्भ

कर दूंगी।"

"परन्तु राजकुमारी जी, मुझे तो इसकी आशा केवल राज-सभा के ही लिए है," मोहन बोला।

"वह तो कुछ ही क्षण के लिए होगा।"

"अच्छा!"

"अब दस बज चुके हैं, चलना चाहिये। आज तो बड़ी देर हो गई। माता जी प्रतीक्षा कर रही होंगी। चलूँ!" कहकर कमला उठ खड़ी हुई तथा द्वार से निकल रथ पर बैठकर नमस्ते करती हुई बोली, "यह भी बड़ा अच्छा हुआ कि यहां से राज-भवन बिल्कुल निकट है। जब चाहे आ सकती हूँ।"

मोहन तथा मालती दोनों ने एक साथ हाथ जोड़कर नमस्ते का उत्तर दिया और रथ चल पड़ा।

[६]

उसी रात राजभवन में—

रानी सो रही थी, परन्तु विजयसिंह उससे कोसों दूर थे। उनके हृदय में एक विचित्र संघर्ष चल रहा था। अन्त में इस संघर्ष से अधीर हो विवश होकर रानी को जगाने के लिये उन्होंने क्षीण स्वर में पुकारा, "रानी!"

"ऊंह।" अलसाये हुए स्वर में रानी ने उत्तर दिया और वह दोनों नेत्रों को मलने लगी।

"सोगई क्या?" प्रेम-मिश्रित स्वर में उन्होंने पूछा।

"नहीं तो।" जम्हाई लेते हुए रानी ने उनकी ओर देखा।

"यदि नहीं सोईं तो अभी तक आंखें मूँदे क्या कर रही थीं?" हंसकर उन्होंने कहा।

"कुछ नहीं, बात क्या है?" लज्जा भरे नेत्रों से रानी ने

प्रश्न किया। उसका हृदय उस समय पराजय की ग्लानि का अनुभव कर रहा था।

"साधारण विषय नहीं है, रानी!" कुछ विचित्र प्रकार की मुखाकृति बनाकर उन्होंने उत्तर दिया।

"तो कोई विशेष बात है?" रानी ने उत्सुक नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए कहा।

"तभी तो तुम्हारी निद्रा भंग की है।" गम्भीरतापूर्वक वह बोले।

"अर्थात्?" विस्मय-पूर्वक उसने प्रश्न किया।

"यही कि कलाकार के विषय में तुम्हारे क्या विचार हैं?" प्रश्न कर उन्होंने अपने नेत्र रानी के मुख पर गड़ा दिये।

"कैसे विचार?" भृकुटि चढ़ाकर उसने प्रश्न किया। उसे जगना खल सा रहा था।

"उसके स्वभाव अथवा आचरण से मेरा अभिप्राय है।"

"अजी, वह तो बड़ा भोला प्रतीत होता है।"

"हां रानी, यह मेरी भी धारणा है।"

"तो फिर?"

"अभी उसने यौवन के द्वार पर पैर ही रखे हैं, रानी!"

"अर्थात्?"

"यही कि अभी वह किशोरावस्था ही में आया है। बीस-इक्कीस से अधिक न होगा। इतनी ही आयु में कितनी अच्छी कविता करता है। उसका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। ऐसे विरले संसार में एक दो ही होते हैं।"

"राम करे आपका विचार सत्य हो।"

"अरे याद करो न। मन्दिर में कितना प्रशंसापूर्ण गायन

उसका था कि बस जी चाहा देवदासी की भांति मैं भी नृत्य करने लगूँ।"

"मुझे भी बड़ा अच्छा लगा। बस ऐसा जी चाहा कि वह गाता जाये, रुके नहीं।"

"हां रानी, अब अपनी कमल कुछ बन जायेगी।"

"अर्थात् ?"

"यही कि अपनी कमल अब एक सफल तथा प्रसिद्ध चित्रकार बन जायेगी।"

"कैसे ?"

"कलाकार अपनी कला अर्थात् कविता को संगीत के रूप में उपस्थित कर उसकी चित्रकला में रंग भर देगा। संसार उसे देख कर आश्चर्य-पूर्वक दाँतों तले उंगली दबा लेगा।"

"मेरा भी हृदय गर्व तथा आनन्द से परिपूर्ण हो नाच उठेगा," गद्गद् कण्ठ से रानी ने भी उनका समर्थन किया।

"अभी तक तो कमल की कला शून्य पड़ी थी। कोई निपुण सहकारी उसे प्राप्त न हो सका था जो उसकी कमी को पूर्ण करता। अब दैवयोग से कलाकार उसकी पूर्ति करेगा। बोलो रानी, मेरा यह अनुमान ठीक है न ?" आंखों में आंखें डालते हुए उन्होंने कहा।

"हां, भला तुम्हारा अनुमान कभी...," कहकर वह मुस्करा दी।

वह भी मुस्करा दिये।

"परन्तु मुझे एक शंका होती है," बड़े बड़े नेत्र नचाकर वह बोली।

"किस बात की ?" उन्होंने प्रश्न किया।

"कहीं कोई अनर्थ न हो जाये," शंकापूर्ण शब्दों में उसने

उत्तर दिया।

"कैसा ?" आश्चर्य मिश्रित लहजे में उन्होंने दूसरा प्रश्न किया।

"यही कि अब कमल अबोध बालिका नहीं रही। वह एक नव-युवती है। इस आयु में सभी व्यक्ति अन्धे हो जाते हैं। वह क्षणिक भोग-विलास के वशीभूत होकर अपना जीवन......।"

"बस बस रहने दो अपने कुविचार," उत्तेजित होकर विजयसिंह ने बात काट दी।

"अरे ! मैं तो......।"

"अरे मैं तो क्या ? मैं मर तो गया नहीं। कलाकार के आचरण पर विशेष ध्यान रखकर परख लूंगा। मुझे कोई मूर्ख समझ रखा है तुमने," कुछ रोष प्रकट करते हुए वह बोले।

"मैं भी कब इससे आंख बन्द करके रहूंगी। बराबर निगाह रखूँगी," मुस्कराती हुई वह बोली।

"फिर वह विवाहित है। उसकी स्त्री सुन्दरी है। एक पुत्र भी है। कमला स्वयं उन दोनों को देखकर आई है," गम्भीरता-पूर्वक उन्होंने कहा।

"तो क्या विवाहित मनुष्य कुमार्ग पर नहीं चल सकते ? अजी ! मैं कहती हूँ अस्सी प्रतिशत कुविचार वाले होते हैं। वे निर्भय होकर दूसरों की बहू-बेटियों से अपनी वासना तृप्त करने में संकोच नहीं करते। उसे पाप नहीं समझते," दृढ़तापूर्वक वह एक ही सांस में यह व्याख्यान दे बैठी।

"तुम्हारे इस कथन से मैं सहमत हूं रानी ! मैं शासक हूँ, न जाने कितने ऐसे व्यक्तियों को मैंने देखा है; परन्तु कलाकार जैसे आचरण का कोई प्रतीत नहीं होता। मनुष्य एक ही क्षण में

उसकी आकृति से पहचान लिया जाता है, समझीं !"

"तुम्हारा कथन सत्य है। मेरा भी तो यही अनुमान है। आने दो कलाकार को राजभवन में। बैठने-उठने दो कमल के साथ। सब विदित हो जायेगा।"

"हां रानी, मैं भी तो यही कहने वाला था। चलो एक समस्या हल हुई। हृदय को शान्ति प्राप्त हुई," मुस्कराकर वे बोले और प्रेमपूर्वक रानी को अपनी ओर खींच लिया। वह भी उनके अंक में सिमट गई।

× × × ×

कलाकार के यहां उसी समय—

चन्द्रदेव खिलखिलाकर हंस रहे थे। समस्त भूलोक उनके प्रकाश से जगमगा रहा था। मोहन अपने घर की छत पर कल्पनाओं में मग्न बैठा था। शायद वह अपने भविष्य के विषय में सोच रहा था। 'कलाकार, मेरी हार्दिक अभिलाषा यह है कि तुम्हारी कला चन्द्रमा के प्रकाश की भांति समस्त संसार में छा जाय। अन्य कलाकार यदि कभी भी तुमसे होड़ लेना चाहें तो वे अपने मुंह की खाकर लौट जायें,' विजयसिंह के ये शब्द उसके कानों में गूंज रहे थे। कलाकार अपने विचारों में निमग्न था।

मालती भी निरञ्जन को सुलाकर कलाकार के पास पहुंची और उसे विचारों में तन्मय देखकर वह उसके एक ओर बैठ गई एवं इस बात की बाट जोहने लगी कि कब वह उसकी ओर ध्यान दे। परन्तु लगभग उसे आधा घण्टा उसी दशा में बैठे हुए होगया। उसने भी अपने नेत्र चन्द्रदेव की ओर घुमाये। उसे ऐसा अनुभव हुआ मानों वह उन दोनों की स्थिति पर मुस्करा रहे हों। अन्त में अधीरतापूर्वक वह मोहन के कन्धे को झकझोरकर बोली,

"स्वामी !"

"मालती," चौंककर अपनी निगाह मोहन ने स्त्री की ओर की। उसके विचार अस्त-व्यस्त हो गये। सारी कल्पनायें तितर-बितर हो गईं।

"क्या सोच रहे थे स्वामी ?" मृदु स्वर में मालती प्रश्न कर बैठी।

"यही अपने भविष्य के विषय में," पूर्ण प्रकार से संभलकर वह बोला।

"अर्थात् ?"

"मेरी कला को अपनी चित्र-कला द्वारा कमला समस्त संसार में प्रचलित करेगी। क्या वास्तव में वह उसका मूल्य लगाने का प्रयत्न करेगा ?" गद्‌गद् कण्ठ से उसने पूछा।

"लगाया तुम्हारे संसार ने। अजी, यदि ऐसा ही होता तो आज सम्पूर्ण भूलोक में कलाकार ही कलाकार दृष्टिगोचर होते ?" मुंह बनाकर वह बोली।

"हां मालती, संसार हृदयहीन है।" कहकर कलाकार ने ठण्डी सांस छोड़ दी।

"परन्तु स्वामी, मुझे इसमें एक बात की शंका प्रतीत होती है," शंकित हृदय से वह बोली।

"किस बात की ?" विस्मयपूर्वक वह पूछ बैठा।

"यही कि कहीं कोई भारी भूल न हो जाय।"

"किससे मालती ?" मुस्कराते हुए उसने प्रश्न किया।

"आपसे," लज्जा भरे स्वर में उसने उत्तर दिया।

"मुझसे ?" कलाकार ने पूछा।

"हां, हां स्वामी, आप ही से," गम्भीरतापूर्वक वह बोली।

"कारण ?" वह भी गम्भीर मुद्रा में तल्लीन था।

"सुनो जब किसी के सम्मुख धधकती हुई अंगीठी रखी जाती है तो वह उससे तापने का... ।"

"धत् पगली, कहीं मुझसे ऐसा हो सकता है। तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं क्या ?" कलाकार ने प्रेम से उसकी ठुड्डी हिला दी।

"तुम पर तो मुझे पूर्ण विश्वास है। परन्तु जब मैं सोचती हूं कि बड़े बड़े तपस्वी-ज्ञानी जब इसकी आंच से न बच सके तो आपकी क्या हस्ती ; बस उसी समय मेरा मन विचलित हो जाता है," सरलतापूर्वक उसने उत्तर दिया।

"अच्छा, तो तुम देखती रहना। मैं इस अंगीठी से खेलूंगा और फिर देखूंगा कैसे यह मुझे झुलसाती है ? इसी प्रकार तुम्हारी शंका दूर होगी ," मुस्कराकर वह बोला।

समझ बूझकर कार्य करो स्वामी। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। हां," उसने आदेश के लहजे में कहा।

"तुम भी बस यों ही हो ," प्रेम-मिश्रित स्वर में वह बोला।

"अजी व्यर्थ में इतना समय नष्ट हुआ। एक बज रहा है, चलो अब सोयें।"

"अच्छी बात है। चलो ," कहकर वह भी उठ खड़ा हुआ।

× × × ×

राजभवन में कमला की दशा—

उधर कमला अपनी शय्या पर पड़ी हुई कल्पना-लोक में विचर रही थी। वह मन ही मन सोच रही थी कि इतना प्रतिभाशाली और कलाविज्ञ होते हुए भी कलाकार कितना सरल है। अपनी कविता के आधार पर बनाये हुए मेरे चित्र को देखकर उसने उसकी कितनी सराहना की और यह भी कह दिया कि एक

योग्य सहकारी प्राप्त हो जाने पर कुमारी जी आप कुशल चित्रकर्त्री बन सकती हैं। उसे नृत्य-कला से भी विशेष प्रेम है, तभी तो देवदासी के प्रति-पद-निक्षेप एवं अंग-भंगिमा को वह निर्निमेष हो देख रहा था। उसके मानस में चित्रकला, काव्यकला तथा नृत्य-कला की अद्भुत त्रिवेणी का प्रवाह अविरल गति से बहता रहता है।

कलाकार की सफलता का सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि काव्य तथा संगीत से किंचित्मात्र प्रेम न रखते हुए भी पिताजी आज उसके संगीत की स्वर-लहरी पर आत्म-विभोर हो झूमने लगे थे। उसकी वाणी में जादू जैसा चमत्कार है। क्या कलाकार के जीवन में मुझे भी कोई स्थान प्राप्त हो सकेगा? क्या मैं उसके हृदय-प्रदेश की रानी बन सकूँगी? क्यों नहीं; अवश्य ही वह मुझे अपना लेगा। यदि विष्णु को लक्ष्मी और माया की आवश्यकता है तो क्या कलाकार को अपनी सहधर्मिणी लक्ष्मी के साथ सरस्वती की आवश्यकता न होगी? सहधर्मिणी तो उसकी लक्ष्मी है। क्या मैं सरस्वती के रूप में उसकी कला के मूल्य को न बढ़ा सकूँगी?

उसकी अन्तरात्मा बार-बार पुकार कर कह रही थी 'क्यों नहीं, अधिकारी को अवश्य उसकी इच्छित वस्तु प्राप्त होनी चाहिये।' अनजाने उसके मन में इस आशंका ने मर्मान्तिक पीड़ा उत्पन्न कर दी कि कहीं उसकी इस कल्पना से कलाकार की सहधर्मिणी को पीड़ा तो न पहुंचेगी। 'नहीं, मैं उसे तनिक भी कष्ट न होने दूंगी। मैं तो कलाकार की सरस्वती बनूंगी; उसे उसकी लक्ष्मी ही रहने दूंगी। अपनी चित्रकला के द्वारा उसकी काव्य-कला को अवश्य उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचाऊंगी।'

वह इसी उधेड़ बुन में व्यस्त थी कि समीप के कमरे में लगी घड़ी ने दो बजने की सूचना दी। इससे उसकी कल्पना-लड़ी टूट

गई और धीरे-धीरे इसी ध्यान में निमग्न वह सोगई।

× × × ×

देवदासी की दशा—

मन्दिर से निवृत्ति पाकर देवदासी अपने निवास-गृह पर पहुंची। उसके अंग-अंग टूट से रहे थे। सारा शरीर अल्कसाया हुआ था। नेत्रों तथा मस्तिष्क में मोहन ही नृत्य कर रहा था। वह भोजन बनाने बैठी। ऐसा अनुभव किया उसने, मानों मोहन उसके सामने बैठा है। वह भूल सी गई कि रोटी तवे पर पड़ी है। जब उसके जलने की दुर्गन्ध उड़ी तो उसकी तन्मयता भंग हुई। किसी प्रकार गिरे हुए मन से भोजन बनाकर खाया। फिर खाट पर धम से जा लेटी और मुख से निकल गया, 'उफ़!' फिर वह कलाकार के विचारों में लीन हो गई। 'कलाकार नित्य की भांति गायेगा। मैं अपने को भुलाकर उसकी एक-एक पंक्ति के भाव पर भली प्रकार नृत्य करूंगी,' मन ही मन वह सोच रही थी।

उसी क्षण उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों पुजारी उसके सामने क्रोध भरा खड़ा हो और वह कह रहा हो, 'बोल, तू देव-दासी है। तुझे केवल इष्टदेव का ध्यान रखना चाहिये। संभल! कहीं तू पतन के खड्ड में न गिर जाय। तुझे किसी मानव से प्रेम करने का अधिकार नहीं।'

वह तकिये पर मुंह औंधाकर फफक-फफक कर रोने लगी और मुख से निकल गया, 'बाबा!' फिर उसी दशा में सिसकती सिस-कती न जाने कब सो गई।

[७]

जीवन एक आखेट है। किसी को यदि किसी का सहयोग प्राप्त हो जाता है तो वह अपनी लगन में अवश्य सफल होता है।

मोहन भी विजयसिंह तथा कमला के सहयोग से विख्यात राज-कवि तथा राज-गायक बन बैठा। उसने अपनी कला से राजा को दोनों कलाओं का प्रेमी बना लिया। अब ऐसा होगया था कि वह बिना मोहन से कुछ सुने रह न सकते थे।

हां तो इन सबका रहस्य थी कमलाकुंवारी। उसने अपना ध्येय बना लिया था, 'कलाकार, मैं तेरी सरस्वती हूं। तुझे सफल बनाने में यदि मेरे प्राण तक चले जायें तो कोई चिन्ता नहीं।' वह (कमला) उसके (मोहन के) सामने जिन भावों में बैठती वह उन्हीं भावों को कविता के रूप में प्रकट कर देता। फिर वह तन्मय होकर उन्हीं भावों को निपुणता-पूर्वक चित्रित कर देती और सभी प्रफुल्लित होकर, 'वाह, वाह' कह उठते।

परन्तु राज-सभा के विद्वानों को इस रहस्य का बोध न था। वे तो केवल उन दोनों की कला पर चकित थे। प्रशंसा करना ही जानते थे। जब जन-समूह कलाकार की प्रशंसा करता था तो विजयसिंह का वक्षस्थल गर्व से फूल उठता था।

राजसभा में अपनी एक अथवा दो कविताएं संगीत के रूप में प्रदर्शित कर मोहन कमला के साथ चल खड़ा होता। वह उसे प्रकृति का निरीक्षण कराती। कलाकार उसका पूर्ण रूप से अध्ययन कर अपने मस्तिष्क में जमा लेता एवं निपुणतापूर्वक उसका वर्णन कर देता। वह ध्यानपूर्वक श्रवण कर उसका चित्र (सजीव) खींच देती। वह अलापता जाता, वह उसी के स्वर पर चित्र बनाती जाती। कमला ने तो न जाने कितनी बार याचना भरे स्वर में कहा था, 'कलाकार, मेरे हृदय में प्रबल अभिलाषा है कि मेरे हाथ तुम्हारी रसना बन जायें।' इस पर उसने भी उत्तर दिया था, 'कुमारी जी, सच्ची लगन है तो ऐसा ही होगा।'

उधर नित्य सायंकाल राज-मन्दिर में मोहन, मालती तथा निरञ्जन के साथ जाता। जनता बड़ी श्रद्धा से एकत्रित होती। मन्दिर का आंगन खचाखच भर जाता। आरती होती। मोहन गाता। देवदासी तन्मय होकर थिरक-थिरक कर नृत्य करती। सभी अपने को भूल जाते। मस्त होकर झूमते रहते। फिर प्रसाद बंटता। सब उसकी पंक्तियों को गुनगुनाते हुए प्रस्थान करते। देवदासी मोहन की ओर ललचाए हुए नेत्रों से देखती रह जाती। वह अपने छोटे से परिवार को लेकर अपने घर के लिए चल देता, स्वच्छ हृदय से बिना किसी चिन्ता के।

मोहन का आचरण वास्तव में प्रशंसनीय तथा आदरणीय था। विजयसिंह तथा उनकी रानी ने न जाने कितनी बार उसकी परीक्षा ली थी। जब वह कमला के साथ एकान्त में बैठकर अपनी कला का प्रदर्शन करता तो वह भी अपनी तूलिका की सहायता से उसके भावों को चित्रित करती। उस समय उन दोनों के अतिरिक्त वहां अन्य कोई न होता। विजय अथवा रानी दबे पैरों जाकर द्वार के एक ओर खड़े हो जाते और घण्टों खड़े रहकर उसके आचरण की परीक्षा करते। वह अपने कार्य में व्यस्त रहता। कमला के हाथ भी उसके स्वर पर चलते रहते। उसकी (मोहन की) स्थिरता को देखकर राजा तथा रानी दोनों को बड़ा आश्चर्य होता। उन्हें उसके इस क्रम पर गर्व था। उन्होंने कमला के उस प्रकार के अध्ययन में कोई विक्षेप न किया और न कभी मोहन के आचरण पर स्वप्न में भी सन्देह किया। कैसे करते ? हर प्रकार से निरीक्षण करके वे सन्तुष्ट जो होगये थे।

जब मोहन कमला से निपटकर अपने घर पहुंचता तो उसकी स्त्री भ्रम-मिश्रित स्वर में प्रश्न करती, "मुझे कैसे विश्वास हो

स्वामी, आप एकान्त में राजकुमारी के साथ बैठे रहते हैं और अपने पर वश किये हुए ? आपके मन में किसी प्रकार की भावनायें अथवा जिज्ञासायें क्या उत्पन्न नहीं होतीं ? अजी, मैं कहती हूँ कि यदि बिल्कुल एकान्त में एक नवयुवक के साथ एक नवयुवती बैठी हो तो यह सम्भव नहीं कि दोनों के हृदयों में किसी प्रकार की कुभावना न उत्पन्न हो।"

"मालती, मैं तुम्हारे कथन से सहमत हूँ, परन्तु मनुष्य वह है जो अपनी इन्द्रियों पर वश रखता है। चाहे जैसी स्थिति क्यों न हो वह अपने में मस्त रहता है। किसी प्रकार की जिज्ञासा अथवा कुभावना को वह अपने पास नहीं फटकने देता। फिर ऐसा सोचा ही क्यों जाये जिससे मन चलायमान हो," मुस्कराकर वह उत्तर देता।

"परन्तु ऐसे विरले ही होते हैं। फिर राजकुमारी कुरूप नहीं। रूप तथा सौन्दर्य की प्रतिमा है। न जाने कितनों के मन चंचल हो उठते होंगे जब वह उनके सामने से निकल जाती होगी। न जाने कितने उसको प्राप्त करने की चेष्टा करते होंगे। अजी, बड़े बड़े तपस्वी अपने पर वश न रख सकें यदि वे आपकी ही भांति एकान्त में उसके साथ बैठें। आप कहते हैं कि घण्टों निश्चल बैठ कर आप उसके क्रम का निरीक्षण करते हैं। मुझे तो विश्वास नहीं होता," आश्चर्य भरे शब्दों में वह कहती।

"अजी मालती, तुम भी बस यों ही हो," कहकर वह हंस पड़ता।

"कैसे ?" विस्मयपूर्वक वह तर्क कर बैठती।

"कुछ ज्ञात भी है ?" मुस्कराता हुआ वह प्रश्न कर बैठता।

"क्या ?" वह पूछती।

"यही कि कलाकार पर केवल कला का ही वश होता है। उसको कभी भी, किसी भी स्थिति में, तुम्हारे जैसे अश्लील विचार नहीं सताते। बड़े नीच विचार की हो तुम," कहकर वह हंस पड़ता।

मालती चिढ़ सी जाती और मन ही मन कुढ़ने लगती।

"वासना तथा कामलोलुपता उससे कोसों दूर रहते हैं। समझीं कुछ?"

"बड़े आए कला के वश वाले। अजी, वे आपकी भांति किसी के दास नहीं होते," तिनककर वह कहती।

"अजी, तुमसे कौन माथापच्ची करे। मैं पूछता हूँ कि मैं किसका दास हूं?" मुस्कराकर प्रेम-मिश्रित स्वर में वह प्रश्न करता।

"विजयसिंह के," मुंह बनाकर वह कह देती।

"यह तुम्हारा भ्रम है, मालती," नम्रतापूर्वक वह कहता।

"भ्रम है मेरा! उहुँह! और नहीं तो। वे ही तो......," वह उत्तेजित हो उठती एवं उसी के वशीभूत होकर अपना वाक्य भी पूरा न कर पाती।

"क्या कहती हो, मालती? वे ही तो मेरी कला के पुजारी हैं, दास हैं। मैं तो अपनी कला की विशेषता का ज्ञान उन्हें कराता हूँ," कहकर वह हंस पड़ता।

"तो आप राजकुमारी जी को एकान्त में कला की विशेषता बतलाया करते होंगे, क्यों जी?" क्रोध से फड़कते हुए अधरों द्वारा वह इतना कह जाती। उसकी धमनियां फड़कने लगतीं, मुख लाल हो जाता और नेत्र भी अंगारे की भांति चमक उठते।

"बड़े नीच विचार हैं तुम्हारे मालती! वह तो मेरी कला को

अपनी कला के रंग में रंग कर संसार पर प्रदर्शित करती है ," घृणा-मिश्रित स्वर में मुस्कराता हुआ वह उत्तर देता ।

"जी, हर समय आप यही किया करते हैं वहां ? अरे, यह क्यों नहीं कहते कि बैठकर उसके रूप-लावण्य को देखते हैं ? न जाने क्या क्या करते होंगे, कोई देखने जाता है ? बड़े घरों की लड़कियां ऐसी ही होती हैं ," चण्डिका का रूप धारण कर वह इतने प्रश्न एक साथ कर जाती, एवं नागिन की भांति तड़प जाती ।

वह उसके बढ़ते हुए क्रोध को देखकर नम्रतापूर्वक केवल इतना ही उत्तर देता, 'यही समझ लो बस ।' फिर उसके नेत्रों के सामने से हटकर अपने कमरे में चला जाता और अपनी आराम-कुर्सी पर बैठकर मालती की मूर्खता के विषय में सोचने लगता ।

मालती भी तिनककर अपने कार्यों में व्यस्त हो जाती । भ्रम उसके हृदय में अपना पग वेगपूर्वक बढ़ाता चला जाता । उसे अब अपने पति के आचरण पर सन्देह होने लगा था ।

× × × ×

एक वर्ष पश्चात्—

मोहन को राजसी कलाकार नियुक्त हुए एक वर्ष व्यतीत हो चुका था । उसकी प्रसिद्धि न जाने कितनी दूर दूर तक हो चुकी थी, साथ-साथ कमला की चित्रकला की भी । अब तो उसके चित्र विख्यात पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे थे । बड़े बड़े चित्रकार प्रायः किसी किसी चित्र को देखते ही रह जाते और उनके मुख से निकल जाता, 'ओह, कितना सजीव चित्रण किया है निर्धनता का । कौन ऐसा व्यक्ति है जो इसका निरीक्षण कर निर्धनता का अनुमान न लगा सके । यही तो सच्ची कला है । कैसी निपुणता-

पूर्वक वास्तविकता का चित्रण किया गया है। बड़ी अनुभवी प्रतीत होती है चित्रकार। बस, ऐसे ही चित्र को देखकर व्यक्ति कह उठता है— 'कला विक्रय की वस्तु नहीं। इसका मूल्य लगाया ही नहीं जा सकता। बस इससे व्यक्ति सब कुछ सीख सकता है। संसार की परिस्थितियों का आभास कर सकता है। कविता की एक-एक पंक्ति चित्र से पढ़ी जा सकती है।'

कमला ने मोहन को अपने हृदय में आसीन कर लिया था, परन्तु इसका ज्ञान किसी अन्य को न था। अब मोहन का अधिकांश समय उसी के साथ व्यतीत होता था। वह तो उसे एक पल भी पृथक् न करना चाहती। उसका हृदय अब ऐसा हो गया था कि जितने समय तक कलाकार उसके साथ विचरता रहे उसके लिये उतना ही सुखप्रद था। रात्रि के ग्यारह बजते ही जब वह चलने के लिये उद्यत होता तो कमला का हृदय व्याकुल हो उठता। वह वेदना-मिश्रित स्वर में कहती, "सुनो, चलने के लिये उठ खड़े हुए? अरे, कुछ क्षण और नहीं बैठ सकते?" बड़ी वेदना होती थी उसके नेत्रों में।

"कैसे ठहरूं?" मुस्कराकर वह प्रश्न सा करता।

"कारण?" भर्राये हुए कण्ठ से वह प्रश्न करती।

"तुम्हीं बताओ, मालती जो रसोई लिये बैठी होगी," मुस्कराकर वह उत्तर देता।

"तो क्यों नहीं कह देते कि वह आपकी प्रतीक्षा न किया करें। स्वयं खाना खा लिया करें। वह व्यर्थ में इतना कष्ट उठाती हैं," नम्रतापूर्वक मुंह बनाकर वह कहती।

"न जाने कितनी बार मैंने इस प्रस्ताव को उसके सम्मुख रखा, परन्तु वह स्वीकार ही नहीं करती।"

"क्यों ," मुस्कराकर तथा नेत्र नचाकर वह प्रश्न कर बैठती।

"कहती हैं, यह नहीं हो सकता। चाहे कुछ भी हो। बिना आपके खाये मैं नहीं खा सकती। चाहे आप सबेरे ही क्यों न आयें ," हंसकर वह उत्तर देता।

उसके इस वाक्य से कमला के हृदय में यही स्वर उठता, 'कलाकार, तुम्हारी मालती धन्य हैं। मुझे कब ऐसा भाग्य प्राप्त हो सकता है कि तुम्हारी कोई सेवा करूं।' वह कुछ रोने सी लगती, परन्तु उसी क्षण संभलकर कहती, "कलाकार, वह बड़ी भाग्यशालिनी हैं ," फिर एक वेग की सांस छोड़ देती।

मोहन कुछ न कह पाता। उसकी विवशता देख वह चुप रह जाता।

"मुझे बालकों से बड़ा प्रेम है ," याचना-मिश्रित स्वर में वह कहती।

"तो फिर ?" वह प्रश्न करता।

"आप निरञ्जन को क्यों नहीं भेज देते ? क्या आपको मेरे ऊपर विश्वास नहीं ?" मुस्कराकर वह प्रश्न करती और लज्जा भरे नेत्रों से उसकी ओर निहारने लगती।

"मुझे कोई आपत्ति नहीं ," नम्रतापूर्वक वह उत्तर देता।

"तो ले आया कीजिए न।"

"किसलिए ?" मुस्कराकर वह प्रश्न करता।

"मैं उसका चित्र खींचूंगी। मालती की यह अभिलाषा है।"

"अच्छा, अच्छा लेता आऊंगा। परन्तु मालती जो अकेली रह जायेंगी।"

"मां को उनके पास भेज दिया करूंगी।"

"वह कैसे जा सकती है ?"

इस प्रकार वार्तालाप कर वह ज्यों-त्यों अपने घर पहुंचता और मालती उत्तेजित होकर कहती, 'छोड़ दिया राजकुमारी जी ने ,' और उसकी धमनियां क्रोध से फड़कने लगतीं।

वह इसका कुछ उत्तर न देता, वरन् चुपचाप खाना खा खाट पर जा पड़ता। पड़े-पड़े सोचता, 'मालती का कथन सत्य है। उत्तर न देने ही में लाभ था' और फिर वह निद्रा देवी की गोद में विश्राम करने लगता।

[८]

ऐसा कोई व्यक्ति ही होगा जिसके जीवन में कोई ऐसी घटना न घटती हो जिसे वह स्मरण न रख सके। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य का जीवन घटनाओं का समूह है। परन्तु कोई ऐसी घटना घट जाती है जो उसे सदा कोंचा सी करती है। जब कभी वह एकान्त में बैठने का अवकाश प्राप्त करता है तो वह उसके सामने नृत्य सा करने लगती है एवं वह नृत्य उसे कर्तव्य-पथ पर चलने के लिये बाध्य करता है। उन दोनों में एक संक्षिप्त संग्राम होता है। यदि मनुष्य तनिक भी उच्च विचार का होता है तो उसके लिये तत्पर हो जाता है। अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता। चाहे उसे कितने ही कष्ट क्यों न उठाने पड़ें। वह अपने कर्तव्य-पथ पर अटल रहता है। सभी कुछ सहन करता चला जाता है—लाञ्छन तथा यन्त्रणायें आदिक। संसार उस पर उंगलियां उठा-उठाकर उसे लाञ्छित करता है, परन्तु वह उसकी लेश-मात्र भी चिन्ता नहीं करता। दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ता चला जाता है उसी पथ पर। यही सच्चा जीवन है।

नित्य की भांति मोहन राज-सभा से उठकर कमला के पास चला। उसने कमला के कमरे में जाकर देखा। वह न जाने

कितने विचारों में मग्न मूर्ति की भांति बैठी हुई थी। उसे अपने शरीर की तनिक भी सुधि न थी। वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। जालीदार जम्पर के भीतर से उठे हुए सुन्दर वक्ष उसके सौंदर्य का प्रमाण दे रहे थे। यदि कोई भी उस समय वहां आता तो यह निश्चय था कि वह अपने पर वश न रख सकता। बस, तुरन्त कामातुर हो शायद कोई भूल कर बैठता। अर्थात्, कमला को उस अवस्था में अपने बाहु-पाश में न जकड़ता तो अनगिन चुम्बन तो अंकित कर ही देता उसके मुख पर। परन्तु यह मोहन ही था जिसके हृदय में किसी प्रकार के कुविचार उत्पन्न न हुए। उसने सामने खिड़की की ओर देखते हुए मृदु स्वर में प्रश्न सा किया, "किन विचारों में लीन हो राजकुमारी जी?"

"कुछ नहीं," चौंककर उसने उत्तर दिया तथा अपने अस्त-व्यस्त वस्त्र संभाले।

"आज राज-सभा में क्यों नहीं गईं आप?" उसी खिड़की की ओर देखते हुए उसने पूछा।

"क्या आप वहीं से आ रहे हैं?" आश्चर्य से वह प्रश्न कर बैठी।

"हूं," गर्दन हिलाकर उसने उत्तर दिया।

"सच?" कमला ने दूसरा प्रश्न किया।

"और नहीं तो क्या झूठ। तनिक घड़ी में तो देखो, क्या बज रहा है?" अबोध आकृति से मुस्कराकर उसने कहा।

"ओ हां, दो बज रहे हैं," घड़ी की ओर देखकर कमला ने कहा।

"आज किस प्रसंग पर कविता की जाये?" दर्पण के सामने वाली कुर्सी पर बैठता हुआ वह प्रश्न कर बैठा।

"कुछ आराम तो कर लीजिए। अभी बतलाती हूं," उसने कहा।

वह दर्पण में अपना तथा उसका प्रतिबिम्ब देख रहा था, और वह उसकी ओर तृषित नेत्रों से निहार रही थी। उससे भली प्रकार स्पष्ट था कि वह उससे किसी वस्तु की याचना कर रही है। मुख से नहीं वरन् अपने नेत्रों द्वारा। उसने उसकी अभिलाषा उसके भावों से भली प्रकार जान ली कि वह क्या चाहती थी। वह अपने हृदय में उठती हुई काम-ज्वाला का दमन चाहती थी। वह उसी क्षण संभला। अपनी कुर्सी एक ओर इस प्रकार घुमा ली कि वह न तो दर्पण में प्रतिबिम्ब को ही देख सके और न कमला की कामातुर मूर्ति को।

"सुनो, आज मैं तुम्हारा चित्र बनाऊंगी। इसी प्रकार बैठे रहना," कांपते हुए स्वर में अटक-अटक कर वह बोली। कण्ठ ने भी सहायता न की। वह स्वर को बाहर न निकलने देता था।

वह अपने ध्यान में मग्न हो चुका था। इसी कारण वह उसके अन्तिम वाक्य को न सुन सका।

कमला ने चित्र खींचने की सारी वस्तुएं एकत्रित कीं और वह एक ओर अपनी दृष्टि घुमाकर उसका चित्र बनाने के लिए उद्यत हुई; परन्तु तूलिका ने सहायता करने से मुख मोड़ लिया। हृदय में न जाने किस प्रकार की भावनाओं का संचार वेग से होने लगा। विचित्र प्रकार का द्वन्द्व मस्तिष्क को मथे डाल रहा था। शरीर के प्रत्येक अंग में कम्पन सा हो रहा था। कण्ठ भर्रा रहा था। धमनियां फड़क रही थीं। सांस बड़े वेग से चल रही थी। कुछ कहने के लिए मुख खोलती तो स्वर कण्ठ तक आकर रुक जाता। वह उस समय उन्मादिनी-सी हो उठी थी। उसका हृदय बार-बार

कलाकार के गले लगने को ललक रहा था, परन्तु पैरों ने उसकी कुछ भी सहायता न की।

दीवार पर लगी घड़ी ने टन्-टन् करके तीन बजाये। मोहन कमला के बनाए हुए नवीन चित्रों के निरीक्षण में व्यस्त था। उसे घड़ी की आवाज भी न सुनाई दी। कमला भी पूर्व की भांति कांपते हुए शरीर से उसकी ओर तृषित नेत्रों से निहार रही थी। खुली हुई खिड़की से वायु का एक झोंका आया और उसके सिर तथा वक्षस्थल पर से वस्त्र खिसक गया। उभरे हुए वक्ष फिर जाली-दार जम्पर से झांकने लगे। उसने आंचल संभालना चाहा, परन्तु साहस ने साथ न दिया। तृषित द्वन्द्व पूर्व से अधिक वेग से बढ़ने लगा। उसका प्रमाण अत्यधिक वेग से चलती हुई उसकी सांस तथा उसी के वशीभूत होकर उछलते हुए उसके दोनों वक्ष दे रहे थे। कान तथा नेत्र लाल हो रहे थे। अब उसके हृदय ने उसे पूर्ण स्वतन्त्रता देकर आज्ञा दी, 'कमल ! संकोच किस बात का ? चल, कलाकार को आज अपना ले। यही तो तेरी अभिलाषा है न। उसकी बन जा। यही अवसर है। इसे हाथ से मत जाने दे, नहीं तो पश्चात्ताप की अग्नि में जलना होगा।' बस ! फिर क्या था ? वह कांपते हुए पैरों से उठकर मोहन की ओर बढ़ी। वह तब भी चित्रों के निरीक्षण में तल्लीन था। कमला की कामातुर तृषा अब चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। वह उन्मान्दिनी बन बैठी और तत्काल ही उसने कलाकार को अपने बाहु-पाश में कस लिया एवं उसके कपोलों तथा अधरों पर अनगिन चुम्बन अंकित कर दिए। वह घबरा उठा। संभलने के लिए उद्यत हुआ, परन्तु उसके उभरे हुए कंचन-कलश जैसे वक्ष तथा मदभरे नेत्रों को देखकर उसका हृदय उद्विग्न हो उठा। कमला के अंगों के स्पर्श से उसके शरीर में

विद्युत्-वेग से वासना जाग उठी। वह कामातुर हो उठा। बीस-बाईस वर्षीय नवयुवक के लिए इसकी प्रखर लपटों से बचना असम्भव होगया। उसने उसे अपने अंक में भर लिया तथा काम-वश होकर उसके प्रवाह में बह गया। कहां तक रोकता वह स्वयं को।

जब उसकी तन्द्रा टूटी तो देखा कमला उसकी ओर सिंदूर की डिब्बी बढ़ा रही थी। उसने बिना कुछ विचारे ही कंपित करों से चुटकी में थोड़ा सिन्दूर ले लिया और उससे उसकी मांग भर दी। अब वह सुहागिन हो गई थी। उसने प्रफुल्लित तथा उत्साहित हृदय से तुरन्त ही उसके चरण स्पर्श किये।

मांग में सिन्दूर भरने के उपरान्त मोहन वहां एक पल भी न ठहरा और विद्युत् की भांति कमरे से बाहर निकल गया। सिन्दूर की डिब्बी दर्पण वाली मेज पर ही रखी रह गई। कमला उसके उस व्यवहार को न समझ सकी। केवल उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से ही निहारती रह गई। फिर जब वह उसकी दृष्टि से ओझल हो गया तो आनन्द से भरे हुए हृदय से दर्पण के सामने खड़ी होकर उसमें अपने प्रतिबिम्ब को देखती रही। फिर कुछ सोचकर मांग के सिन्दूर को पोंछ डाला।

उधर मोहन बड़े वेग से अपने पैर बढ़ाता हुआ पागलों की भांति घर की ओर बढ़ रहा था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था मानों मालती ठहाका मारकर हंस रही हो और कह रही हो, 'स्वामी! बड़े बड़े ज्ञानी-तपस्वी इस आंच से न बच सके। अरे तुम क्या हो? असफल रहे न तुम अपनी साधना में? बड़ा गर्व था तुम्हें अपने पर। हा हा हा।' उसके पास उसका कोई उत्तर न था। उसका हृदय ग्लानि तथा क्षोभ से जल रहा था और उसकी अन्त-

रात्मा पुकार-पुकार कर कह रही थी, 'मोहन, तूने आज क्या कर डाला ? इसके प्रायश्चित्त के लिए उद्यत रह ।'

सचमुच आज मालती की विजय हुई थी।

[६]

मोहन ने इसी उधेड़-बुन में व्यस्त घर में प्रवेश किया । मालती ने उसे असमय आया देखकर आश्चर्यपूर्वक प्रश्न किया, "आज इतनी जल्दी कैसे भूल पड़े ?"

कलाकार ने मालती की बात को सुना अनसुना कर दिया एवं अपने को संभालता हुआ निकट पड़ी हुई खाट पर बैठ गया।

"अजी, बोलते क्यों नहीं ? मैं तुम्हीं से कुछ पूछ रही हूँ।" गम्भीरतापूर्वक अनुरोधपूर्ण स्वर में वह बोली।

"पूछो न, मैंने मना कब किया है ," हंसने का भाव प्रदर्शित करते हुए उसने कहा।

"तुम व्यर्थ में छिपाने का प्रयत्न कर रहे हो, स्वामी। तुम्हारी मुखाकृति से तो यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि आज तुम्हारा जी कुछ अच्छा नहीं । बोलो न, क्या बात है ?"

"हां मालती, तुम्हारी बात ठीक है । कुछ ऐसी ही बात है ," व्याकुलतापूर्वक वह बोला। उसके शब्दों से बेचैनी स्पष्ट-रूप से झलक रही थी।

"तो चाय बनाऊं ?"

"ऊंहुंह ," कहकर उसने दीर्घ निश्वास छोड़ी और वहां से उठकर आंधी की भांति अपने ऊपर के कमरे में चला गया। वहां जाकर वह आराम-कुर्सी पर लेट गया, हृदय में न जाने कितने प्रकार के द्वन्द्व लिए हुए। उसका सिर चकरा रहा था। उसे ऐसा

प्रतीत हो रहा था मानों पूरा कमरा तथा प्रत्येक वस्तु घूम रही हो और उसकी विवशता पर अट्टहास कर कह रही हो—'कलाकार मोहन ! यह संसार है। पग-पग पर इसमें मनुष्य को डिगाने वाली वस्तुएं मिलती हैं। वह उनसे तभी बच सकता है जब वह दृढ़ता-पूर्वक अपने कर्त्तव्य-पथ पर अटल रहे। उन डिगाने वाली तथा पथ-भुलाने वाली वस्तुओं के सुहावनेपन पर ध्यान न दे। अपने नेत्र केवल अपने पथ पर ही स्थिर रखे। उनकी लेशमात्र भी चिन्ता न करे। उन्हें चिल्लाने दे। कर पसारे रहने दे और यदि पैर डगमगाने लगें तो कुछ क्षण के लिए उसी स्थान पर बैठकर स्वयं को संभाल ले। फिर आगे बढ़े, जब कुछ स्थिरता प्राप्त हो जाय। तब कहीं उसका जीवन सफल हो सकेगा, तभी वह मनुष्य कहला सकेगा। देख, क्षोभ न कर। जो कुछ तू कर चुका, उसका शोक न कर। फिर तूने तो अपनी भूल स्वीकार कर ली है, उसका प्रायश्चित्त भी करने के लिए तू उद्यत है। तो फिर वह भूल कब हुई ? वह तो यही हुआ कि तेरे पग डगमगाने लगे थे। तूने बराबर से जाते हुए बटोही को अपना संगी बना लिया था। बस ! इसमें पश्चात्ताप करने की कौन सी बात है ? माना कि संसार इस बटोही का सहयोग सहन न कर सकेगा। न करे। तू इसकी चिन्ता न कर। संसार अन्धा तथा हृदयहीन है, मूर्ख है। यदि तेरे ऊपर वह इसके लिए उंगलियां उठाता है तो उठाने दे। तू अपने सच्चे मार्ग से न डिग। उस बटोही का साथ न छोड़। तूने तो उसे अपना लिया है, वह भी अब तेरे ही सहारे चलेगा। यदि तू अब उसका साथ छोड़ देगा तो शायद तू अपनी लगन में स्थिर न रह सके और अपने चारों ओर फैले अन्धकारपूर्ण खड्ड में गिरकर प्रकाशित मार्ग से पृथक् होजाय। धैर्य धर ! उठ ! अपने पथ पर

बढ़। उस बटोही का जीवन अब तेरे संग बंध चुका है। कहीं उसे पृथक् करके अनर्थ न कर बैठना।' वह इस चीत्कार तथा अट्टहास से व्याकुल हो उठा। उसने अधीरतापूर्वक सामने भगवान् के चित्र पर नेत्र गड़ाकर केवल इतना ही कहा, "भगवन्! मुझे सच्चा मार्ग दिखा। मेरे नेत्रों से अभी कुछ सूझ नहीं पड़ता। क्या करूं?" ऊबकर उसने अपना मुख दोनों हाथों से ढांप लिया। विवशता भरी सांस निकल गई और सहसा मुख से निकल गया, "उफ़!" बड़ी करुण स्थिति थी उसकी।

उस स्थिति में व्यस्त वह (मोहन) लगभग एक घण्टा व्यतीत कर चुका था कि मालती ने प्रवेश किया। वह किसी गूढ़ समस्या के सुलझाने में लीन था। उसे तनिक भी ध्यान न था अपने चारों ओर का। वह उसके बिल्कुल निकट जाकर खड़ी हो गई। खड़ी रही उसकी ओर निहारती हुई सात आठ मिनट तक। जब उसका मौन अधिक सहन न कर सकी तो मृदु स्वर में बोली, "स्वामी, चाय लाई हूँ," तथा छोटी गोल मेज़ उसके सामने खिसकाकर चाय की सारी वस्तुएं उस पर रख दीं।

"आं?" वह चौंक सा पड़ा तथा हड़बड़ाकर अपने बड़े-बड़े नेत्र उसके मुख पर स्थिर कर दिये। उसी क्षण उसे अपनी स्थिति का ध्यान आया। वह संभलकर बैठने लगा।

"बात क्या है, स्वामी? आज कुछ खोये खोये से आप दीख पड़ते हैं?" उसकी व्याकुलता को दृष्टिगोचर कर नम्रतापूर्वक मालती प्रश्न कर बैठी तथा कुर्सी खींचकर उसके सामने बैठ गई।

"खोया-खोया सा? नहीं नहीं! यह तुम्हारा भ्रम है मालती," भड़भड़ाकर एक सांस में वह इतना कह गया। अपनी दशा छिपाने के लिए चाय की प्याली उठाकर तुरन्त ही मुँह में लगा ली तथा

एक घूंट शीघ्रता से गले के नीचे उतार गया। इस क्रम से उसका मुख जल गया। इससे उसे खीझ सी अनुभव हुई। उसने मुँह पर बल लाकर प्याली मेज़ पर रख दी।

"तो फिर इतनी व्याकुलता क्यों?" नम्रतापूर्वक उसने दूसरा प्रश्न प्रस्तुत किया तथा चम्मच से शक्कर चाय में मिलाने लगी।

"अजी, तुम भी बस पीछे ही पड़ जाती हो। कह तो दिया कुछ नहीं हुआ," झुंझलाकर वह बोला।

"इसमें अप्रसन्न होने की कौन सी बात है, स्वामी? कोई बात यदि मुझे नहीं बताना चाहते, तो न सही," मैं कोई जबरदस्ती तो कर नहीं सकती। विवशतापूर्ण आकृति बनाकर वह बोली तथा आश्चर्यपूर्वक नेत्र फाड़ फाड़कर उसके मुख के भावों को दृष्टिगोचर करने लगी।

"मन मैला न करो, मालती" उसे अपनी भूल का आभास हुआ। अब वह नम्र पड़ गया था।

"अरे! मैं क्या कर लूंगी मन मैला करके। हुँह!" मुंह बना कर उसने अपना मुख झिटक सा दिया तथा चाय की प्याली उठाकर एक घूंट सुड़क गई।

"रुष्ट न हो मालती! बात समझा करो। प्रायः मनुष्य तनिक सी बात पर अपनी बुद्धि खो बैठता है एवं उसे (बुद्धि) प्राप्त करने के लिए यथा सम्भव चेष्टायें करता है," प्रेम मिश्रित स्वर में उसने उत्तर दिया।

वह स्तब्धतापूर्वक स्थिर नेत्रों से उसकी विवशता देख रही थी। उसकी उस स्थिति पर उसे दया सी आरही थी।

"चिन्ता न करो, मालती। कुछ पूछूं, बताओगी?" चाय का एक घूँट गले से नीचे उतारकर मृदु स्वर में उसने निवेदन किया,

तथा प्याली मेज़ पर रख दी। पीठ कुर्सी के सहारे लगा दी।

"निश्चय," उत्साहित हृदय से वह उत्तर दे बैठी।

"मान लो मालती! यदि कोई मनुष्य......! जाने दो न कहूँगा," कहकर वह रुक गया।

"रुक क्यों गये स्वामी? संकोच की कौनसी बात है?" विस्मयपूर्वक वह प्रश्न कर बैठी।

"अच्छा, हां! यदि कोई मनुष्य कोई बड़ी भूल कर बैठे तो?" प्रश्न कर उत्तर के लिये अपने नेत्र उसके मुख पर गड़ा दिये।

"तो उसको उसका प्रायश्चित्त करना होगा," दृढ़तापूर्वक वह बोली।

"अच्छा! मान लो मालती, वह भूल मैंने ही कर डाली हो तो?"

"कैसे मान लूं? आपका स्वभाव ही ऐसा नहीं।"

"कोई मैं परमात्मा तो हूं नहीं," उसने उत्तर दिया।

"कोई बात नहीं। कोई बात नहीं। मनुष्य ही से भूल हुआ करती है।"

"तो मान लो, अनजाने में मैंने भूल ही से कहीं अपना दूसरा विवाह कर लिया हो तब?" अब वह कुछ गम्भीर हो चला था।

"विवाह! भूल से? यह कैसे हो सकता है, स्वामी?" आश्चर्यपूर्वक बड़े-बड़े नेत्र निकाल कर वह प्रश्न कर बैठी।

"भूल से सभी कुछ हो सकता है, मालती!" नम्रतापूर्वक वह बोला।

"मैं नहीं समझी," भृकुटि चढ़ाकर वह बोली।

"मान लो, मालती, यदि मैंने आवेश में आकर किसी नव-

युवती को सुहागिन कर दिया हो तो ?"

"पहेलियां न बुझाओ, स्वामी ! जो कुछ कहना चाहते हो स्पष्ट कह दो। संकोच की कोई बात नहीं," व्यग्रतापूर्वक वह याचना सी कर बैठी।

"तुम्हीं बताओ, 'क्या वह नवयुवती सुहागिन नहीं हुई जिसकी मांग मेरे हाथों ने सिन्दूर से लाल कर दी, उसके साथ मैंने सुहाग-रात सा व्यवहार किया ?" कातरतापूर्वक वह प्रश्न कर बैठा।

"हां जी, वह तो पूरी सुहागिन हो गई। इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं," अवाक् होकर उसने उत्तर दिया।

"तो फिर बोलो, तुम उसे अपने साथ रख सकोगी, मालती ?" कहकर वह उसके मुख के भाव पढ़ने का प्रयत्न करने लगा। मानों वह उससे उत्तर प्राप्त कर लेना चाहता हो।

"ऊंहुंह ! मैं अपने जीते जी किसी अन्य स्त्री को घर में पैर तक न रखने दूंगी, साथ रखना तो दूर की बात है," उत्तेजित होकर वह बोली।

"कारण ?" हंसकर उसने पूछा।

"मेरी मर्जी ! फिर मैं अपने घर की मालकिन जो ठहरी। मुझे पूर्ण अधिकार प्राप्त है। चाहे घर को बनाऊं, चाहे तहस-नहस कर डालूं," गर्वपूर्वक मुंह बनाकर वह बोली। मानों वह महारानी हो। उसका गर्व उसी क्षण रोष में परिवर्त्तित हो गया।

"तो रुष्ट क्यों होती हो ?" ठहाका मारकर वह हंस पड़ा।

"हां हां, इसमें हंसने की कौनसी बात है ? अभी तक तो बैठे रो रहे थे" खीझती हुई एक सांस में वह इतना कह गई।

"अच्छा शो, अब कुछ न कहूँगा," कहकर वह गम्भीर मुद्रा

बनाने की चेष्टा करने लगा।

"परन्तु ऐसी बात हो ही क्यों ? फिर ऐसे विवाह लुक-छिपकर किये ही कब जाते हैं ? कौन उन्हें देखता है। समाज उन्हें क्यों स्वीकार करने लगा ?" तिनक कर उसने एक बार में इतने प्रश्न कर डाले। वह उस समय पूर्ण रूप से क्रोधावेश में थी।

"अच्छा मालती, जब तुम समाज पर आईं तो मैं पूछता हूँ कि यह समाज किसका बनाया हुआ है ?" गम्भीरतापूर्वक उसने प्रश्न किया।

"ईश्वर का," उसने उत्तर दिया।

"तुम यह तो स्वीकार करती ही हो कि ईश्वर सर्व-व्यापक है ?" प्रश्न-सूचक नेत्रों से वह मालती की ओर देखने लगा।

"हूं।" दृढ़तापूर्वक वह बोली।

"अच्छा, तो अब बोलो मालती, यदि ऊपर कहा गया व्यवहार मैंने किसी के साथ किया तो उसे ईश्वर ने देखा न ?"

"निश्चय।" नेत्र मटकाकर उसने उत्तर दिया।

"तो फिर वह विवाह हुआ कि नहीं ?" आतुरतापूर्वक वह प्रश्न कर बैठा।

"हुआ! परन्तु......।"

"परन्तु क्या ?" रुकती देखकर वह फिर प्रश्न कर बैठा।

"अन्य उसे क्यों स्वीकार करने लगे ?" चंचल नेत्रों से इधर उधर देखकर वह बोली।

"अन्य से तुम्हारा आशय क्या है ?"

"समाज से।"

"न करे स्वीकार तो न सही। इसकी क्या चिन्ता अजी ? उसका उत्पन्न करने वाला तो स्वीकार करता है," तर्क करते हुए

वह बोला।

"मैं पूछती हूँ तुम दूसरा विवाह करो ही क्यों ? और वह भी मेरे रहते ?" सूखी हंसी हंसकर वह प्रश्न-सा कर बैठी।

"कोई कारण नहीं। परन्तु भूल से ऐसा कर ही बैठा हूं तो ?" मुस्कराकर वह पूछ बैठा।

"तो वह अपने यहां प्रसन्न, मैं अपने यहां प्रसन्न।" ऊबती हुई वह बोली। "यह तो सब आपके वश की बात है। ऐसा इस संसार में कितने ही व्यक्ति किया करते हैं, परन्तु आपकी भांति वे सबको अपनी स्त्री नहीं मान बैठते। अजी, यदि वे मानने लगें तो यह पता नहीं कि कितनी स्त्रियों के पति हो जायें।"

"मैं उन व्यभिचारी व्यक्तियों में नहीं हूँ और न मैं नीच आचरण वाला हूँ। मैं तो भूल करता हूँ तो कह देता हूँ कि मैंने अमुक भूल की है। उसका दण्ड भोगने को उद्यत हूँ।"

"इसी से तो मुझे अपने ऊपर गर्व है कि मैं एक आदर्श पति की अर्धांगिनी हूँ," गर्व से मस्तक उन्नत कर वह बोली। उसका एक एक अंग आनन्द से प्रफुल्लित हो उठा। वह लपककर अपने पति के वक्षस्थल से जा लगी और उसके नेत्रों में अपने नेत्र डालती हुए प्रेममिश्रित स्वर में बोली, "स्वामी, आप ही ने तो वचन दिया था कि मेरे अतिरिक्त अन्य से······।"

"मैं कब अपने वचनों से विमुख हूं ?" सान्त्वना से उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कलाकार ने कहा।

उसी समय घड़ी ने छः बजे की सूचना दी। वह संभलती हुई बोली, "अरे, मन्दिर जाने की तैयारी न करोगे ?"

"आज मन नहीं करता," क्षीण स्वर में उसने उत्तर दिया।

"कमला के पास जाने को करता होगा ? अजी, कुछ क्षण

राम-नाम ले लिया करो या वह भी बुरा लगता है ," ताने भरे स्वर में वह बोली और वहां से जाने का उपक्रम करने लगी।

"कहां जा रही हो मालती ? तनिक देर बैठो तो ," मुस्कराकर अनुरोधपूर्ण स्वर में वह बोला।

"मैं खाली तो हूं नहीं। तुम्हारी भांति व्यर्थ की झख लड़ाना मेरा काम नहीं। बहुत लड़ा चुकी इतनी देर तक। अब और काम भी तो करने हैं ," मीठे लहजे में वह मुस्कराती हुई बोली और 'मेरे पास अब अधिक समय नहीं ' कहकर वहां से चल दी, झमझमाती हुई। मोहन अभिलषित नेत्रों से उसकी ओर देखता रह गया। उसकी समस्या पूर्व की भांति उलझी हुई रह गई। वह फिर उसी के सुलझाने में मग्न हो गया।

लगभग पौने आठ बजे रात्रि में मालती ने वहां पदार्पण किया। अलमारी पर प्रज्ज्वलित लालटेन को रखती हुई वह बोली, "मन्दिर में सब आपकी बाट जोह रहे हैं। राजदूत बुलाने के लिये आये हैं, बाहर खड़े हैं। क्या कह दूं ?"

"कह दो, जी अच्छा नहीं। न जा सकूँगा वहां।" उसने दीर्घ निश्वास ली। मालती उसका उत्तर प्राप्त कर वहां से चली गई।

[१०]

उस दिन से मोहन न तो राजभवन ही गया और न राज-मन्दिर तथा राजसभा में। बस, अपने घर में गुमसुम बैठा वह किसी गुत्थी को सुलझाया करता।

राजमन्दिर से नित्य नियत समय पर राजदूत उसे बुलाने आते, परन्तु मालती का एक ही वाक्य 'आज भी वह न जा सकेंगे। अभी जी अच्छा नहीं ,' सुनकर वे लौट जाते। देवदासी नृत्य

करती, घण्टा-घड़ियाल आदि सब बजते। कीर्तन होता, परन्तु दर्शकों को कोई रस न प्राप्त होता। वे किसी प्रकार समय व्यतीत कर प्रसाद लेते एवं अपने घर का रास्ता पकड़ते।

देवदासी नृत्य करती, परन्तु उसके पैर उसका भली प्रकार साथ न देते। वह राधाकृष्ण की मूर्ति की ओर करुण नेत्रों से निहारती; परन्तु वहां उसे कुछ भी दृष्टिगोचर न होता। बस, अपना दैनिक कर्तव्य समझ कर वह नृत्य का प्रदर्शन कर देती। फिर गिरे हुए हृदय से कुछ क्षण बैठकर अपने कमरे में चली जाती और धम् से अपनी शय्या पर पड़ रहती। मोहन उसके नेत्रों के सामने नृत्य-सा करने लगता। उसका हृदय प्रश्न करता, 'क्या होगया है, कलाकार को? कहीं मेरा आचरण उसे बुरा तो नहीं प्रतीत हुआ?' ऐसे ही प्रश्नों में डूबती-उतराती वह न जाने कितनी देर तक पड़ी रहती। उसे तनिक भी सुधि नहीं रहती। उसी अवस्था में विचरते-विचरते वह न जाने कब निद्रादेवी की गोद में चली जाती।

× × × ×

विजयसिंह भी अब कलाकार की अनुपस्थिति का अनुभव करने लगे थे। उन्हें राज-सभा मानों शून्य सी प्रतीत होती थी। जैसे ही उसके खाली स्थान पर उनकी दृष्टि जाती, उनके हृदय में एक टीस सी उठती। वह कुछ घबरा से जाते। एक दिन वह राज-सभा में न गये; वरन् उसी के विचारों में लीन राज-भवन में ही बैठे रह गये। उनके हृदय में न जाने कितनी शंकायें उत्पन्न हो रही थीं, 'क्या हो गया है, कलाकार को? आज चौथा दिन है उसकी झलक तक मुझे न मिल सकी। कहीं रुष्ट तो नहीं होगया वह? कौन सी ऐसी भूल हो गई मुझसे?' इतने में रानी वहां

आ उपस्थित हुई और प्रफुल्लित हृदय से मुस्कराती हुई बोली, "सुनते हो ?"

"क्या ?" चौंककर उन्होंने प्रश्न किया।

"किरण आया है ," आनन्दित हृदय से वह बोली।

"कब ? कितनी देर हुई उसे आये हुए ?" उत्सुकता प्रकट करते हुए वह प्रश्न कर बैठे।

"अभी अभी बिल्कुल ! अजी, बहू भी आई है। सामान उतारा जा रहा है।"

"बड़ा अच्छा हुआ ," प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए वह बोले।

"चाचा जी प्रणाम् !" कहते हुए किरण ने कमरे में प्रवेश कर उनके चरण स्पर्श किये।

"चिरञ्जीव रहो ," गद्‌गद् कण्ठ से विजयसिंह ने आशीर्वाद दिया।

"ले, बैठ जा किरण ," कहकर रानी ने कालीन बिछा दिया। उसने भी आज्ञा का पालन किया।

"तूने तो किरण, यहां का आना-जाना ही स्थगित कर दिया। अरे, तूने अपने आने की सूचना तक नहीं दी। सवारी ही भेज देता यदि न लेने पहुंच पाता तो ," विजयसिंह ने कहा।

"हां किरण, जब तू दस वर्ष का था तब लाला जी (देवर) तुझे लेकर यहां से चले गये थे। अब होगया तू बीस वर्ष का। उफ, बीस वर्ष पश्चात् यहां आया है तू। कहीं भूला-भटका तो नहीं ?" आश्चर्य पूर्वक बड़े-बड़े नेत्र निकाल कर रानी ने प्रश्न-सा किया।

"नहीं तो चाची जी, भूलता कैसे ? क्या कोई छोटे-मोटे मनुष्य का भतीजा हूँ। मैं भटक कैसे सकता हूँ ?" मुस्कराकर

उसने उत्तर दिया।

"हां रे! भैया कैसे हैं? भाभी तो कुशलपूर्वक हैं न?" विजयसिंह ने प्रश्न किया।

"सब ईश्वर की कृपा है। कमला कहां है?"

"क्या मिली नहीं? मैं तो समझी थी बहू को उसी ने रोक लिया है," रानी ने कहा।

"नहीं तो। उनको तो बिजली के पास कर आया हूँ," किरण ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

'अच्छा' कहकर उसने उच्च स्वर से पुकारा, "बिजली!"

"आई रानी मां," कहती हुई नौकरानी आ उपस्थित हुई।

"तनिक कमल को तो भेज दे," रानी ने आज्ञा दी।

वह चली गई।

"रानी मां, वह तो कलाकार के यहां गई हुई हैं। अपने कमरे में तो हैं नहीं," बिजली ने कुछ क्षण पश्चात् आकर कहा।

"चाचा जी, यह कलाकार कोई नवीन...?" रुक-रुक कर विस्मय से उसने प्रश्न किया।

"हां किरण, लगभग तीन वर्ष होने को आते हैं। मैंने एक राजसी कलाकार नियुक्त कर लिया है। क्या कहूँ, बड़ा माधुर्य है उसके कण्ठ में। वह अपनी कविता को बड़ी मधुरता से सुनाता है। कमला बैठकर उसकी कविता का सजीव चित्रण करती है। देवदासी उसके स्वर पर नृत्य करती है। वह अपने अंगों द्वारा उसके गायन के भावों को प्रदर्शित करती जाती है और दर्शक-गण मस्त होकर झूमने लगते हैं। मन्दिर गूँज उठता है। बड़ा योग्य है वह नवयुवक।" कहकर विजयसिंह एक दीर्घ निश्वास छोड़ बैठे।

"नवयुवक है वह ?" भृकुटि चढ़ाकर किरण ने प्रश्न किया।

"हां हां किरण, अभी कठिनता से उसकी आयु तेईस वर्ष की होगी। बड़ा भोला है वह। आचरण भी उसका बड़ा प्रशंसनीय है," मृदु स्वर में रानी ने उत्तर दिया।

"आप तो चाची जी, ऐसी बातें करती हैं कि हंसी आती है," मुस्कराकर किरण ने कहा।

"कारण ?" गम्भीरतापूर्वक रानी ने प्रश्न किया।

"यही कि कलाकार का आचरण प्रशंसनीय है," नेत्र नचाता हुआ वह बोला। उसके हृदय में कलाकार के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया था।

"तुम्हारी चाची जी का कथन सत्य है, किरण! हम दोनों ने भली प्रकार इसका निरीक्षण कर लिया है। वह निष्कपट होकर कमल की चित्रकला की उन्नति में हाथ बंटाता है," विजयसिंह ने रानी की सराहना की।

"हां किरण, राजसभा में वह अपनी कविता को सुनाने के उपरान्त कमला के पास चला जाता है।" यह रानी थी।

"एकान्त में अध्ययन कराता होगा ?" विस्मयपूर्वक किरण ने कहा।

"हां," विजय ने उत्तर दिया।

"तब तो यह अच्छा नहीं। न जाने किस समय क्या हो जाये ? उन दोनों के निकट किसी का बैठना आवश्यक है," नम्रतापूर्वक किरण ने अपनी सम्मति प्रकट की।

"तुम्हारा कथन सत्य है, परन्तु अपना कलाकार ऐसा नहीं। वह उच्च परिवार का है," दृढ़तापूर्वक विजयसिंह बोले।

"हो सकता है, चाचा जी।"

"छोड़ो भी इन बातों को। स्नानादि से निवृत्त हो लो, तो फिर कलाकार के यहां चलेंगे," मुस्कराते हुए उन्होंने आदेश सा दिया।

"आप और कलाकार के यहां जावें! वह भी राजा होकर," बड़े-बड़े नेत्र नचाकर किरण ने कहा।

"तो क्या हुआ?" कहकर वह मुस्करा दिये।

"चाचा जी, मेरी मानिये तो न जाइये," गम्भीरतापूर्वक वह बोला।

"कारण?" आश्चर्य में वह प्रश्न कर बैठे।

"आप अपने गौरव-पूर्ण पद का तो ध्यान कीजिए। उसको स्वयं यहां आना चाहिये। वह आपका दास है," अभिमान भरे शब्दों से वह बोला।

"किरण, तुम अभी इन बातों को नहीं समझते। कलाकार किसी के दास नहीं होते। बस यदि उनको किसी का दासत्व करना पड़ता है तो वह अपनी कला का। हम सब ही उसके दास हैं," हंसते हुए वह बोले।

"वह दास क्यों नहीं? आप तो उसको अन्य कर्मचारियों की भाँति वेतन देते हैं?" मुस्कराकर किरण ने कहा।

"तो इसका आशय तुमने यह निकाला कि वह हमारा दास होगया। किरण, मैं सच कहता हूं कि वह सच्चा कलाकार है। उसने सबके हृदय में कला के प्रति प्रेम जगा दिया है," गद्गद् कण्ठ से उन्होंने उसे समझाने की चेष्टा की।

"मुझे भ्रम होता है कि आपकी प्रशंसा कलाकार को अभिमानी न बना दे।"

"किरण, अभी तुम निरे बालक हो। आये तो हो ही, अनुभव कर लेना। आज तीन दिन हो गये, न तो वह राज-सभा में ही

आया और न कमल को चित्र बनवाने ही। न जाने क्या बात है? चलकर देखेंगे," कहकर विजयसिंह कमरे से बाहर निकल गये। रानी पूर्व ही किरण की पत्नी प्रकाशो के पास जा चुकी थी। किरण भी उठकर अपने कार्यों में व्यस्त हो गया।

दो घण्टे पश्चात् विजयसिंह किरण तथा रानी मोहन के यहां पहुँचे। सामने मालती मिली। उन तीनों व्यक्तियों को एक साथ आते देखकर वह आश्चर्य में पड़ गई और सहसा उसके मुख से निकल पड़ा, "नमस्ते।"

"चिरञ्जीव, पुत्री! चिरञ्जीव," हंसकर विजयसिंह तथा रानी दोनों ने उसको एक स्वर में आशीर्वाद दिया।

"नमस्ते।" मानों किरण चौंक-सा पड़ा।

"निरञ्जन, प्रणाम कर।"

"परनाम," अबोध स्वर में हाथ जोड़कर निरञ्जन ने उच्चारण किया।

"इतना बड़ा हो मेरा लाल," प्रथम शब्द को विशेष प्रकार से खींचकर विजयसिंह ने उच्चारण किया तथा रानी ने प्रेम से अपनी गोद में लेकर उसके अनगिन चुम्बन ले लिये।

"कहां है मोहन?" गम्भीरतापूर्वक विजयसिंह ने प्रश्न किया।

"ऊपर अपने कमरे में," नम्रतापूर्वक मालती ने अपना दाहिना हाथ उठाकर संकेत कर दिया।

"जी कैसा है उसका?" यह विजयसिंह का दूसरा प्रश्न था।

"अच्छा है अब तो," नम्रतापूर्वक वह बोली।

"तो फिर आया क्यों नहीं राज-सभा में?" मुस्कराकर वह प्रश्न कर बैठे।

"कह नहीं सकती। आज चौथा दिन है। वह घर से बाहर ही

नहीं निकले। बस भोजन करने के लिए नीचे उतरते हैं और फिर जाकर अपने कमरे में बैठ जाते हैं स्तब्ध। न जाने किस गूढ़ समस्या के सुलझाने में व्यस्त रहते हैं वे।"

"अच्छा पुत्री, हम उसके पास जाकर सब मालूम किये लेते हैं," कहकर तीनों ने मोहन के कमरे की ओर प्रस्थान किया। कमरे में जाकर उन्होंने देखा कि कलाकार अपनी आराम-कुर्सी पर दोनों हाथ ऊपर किये मूर्ति की भांति स्तब्ध पड़ा था। उन सब के पगों की चाप सुनकर वह चौंक पड़ा और हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ तथा शीघ्रता से हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक उसने कहा, "प्रणाम।"

"चिरायु हो," प्रेम-मिश्रित स्वर से विजयसिंह ने आशीर्वाद दिया।

उसके उपरान्त कलाकार ने तीनों को आदरपूर्वक बिठाया।

"कलाकार, तुम्हें क्या हो गया है? तुम राज-सभा तथा मन्दिर में क्यों नहीं आते? बड़ा सूना-सा लगता है तुम्हारे बिना," व्यग्रतापूर्वक विजयसिंह ने प्रश्न किया।

"कुछ भी नहीं, राजन्," नम्रतापूर्वक मोहन ने उत्तर दिया।

"तो फिर क्या बात है?" उज्ज्वल नेत्रों से मुस्कराते हुए वह फिर प्रश्न कर बैठे।

"न जाने क्यों हृदय में स्थिरता नहीं रहती। किसी कार्य में मन ही नहीं लगता। इसी कारण...।" कुछ रुक-रुक कर वह बोला।

"समझा," कहकर उन्होंने बात काटते हुए दीर्घ निःश्वास छोड़ी। किरण तथा रानी स्थिर नेत्रों से निहार रहे थे।

वह कुछ न कह सका, वरन् लज्जावश सिर झुकाकर अपनी कमीज़ की किनारियां मोड़ने लगा।

"कलाकार, राज-सभा में अब मुझे कोई रस नहीं प्राप्त होता। मन्दिर में सभी एकत्र होते हैं। वही देवदासी नृत्य करती है। पुजारी जी भजन गाते हैं। कीर्तन होता है। घण्टे-घड़ियाल सभी उसी प्रकार बजते हैं। आरती होती है। प्रसाद बंटता है और मूर्तियों की ओर देखकर मैं ऐसा अनुभव करता हूँ मानों वे भी तुम्हीं को चाहती हैं," पीड़ा मिश्रित स्वर में कहकर उन्होंने आह भरी।

मोहन सिर झुकाये स्तब्ध बैठा था, मानों वह अपने में खो गया हो। उसका हृदय विजयसिंह की बातें सुनकर रो पड़ा। उसने ऐसा अनुभव किया मानों वह उसे धिक्कार रहा हो, 'मोहन, तेरे कारण इतनी आत्माओं को कष्ट पहुंचा और तू देखता रहा।'

"कमल भी यहां आती-जाती है। उसे बालक इतने प्रिय हैं कि क्या कहूँ? वह भी यहां आकर निरञ्जन से उलझ जाती है। फिर जब मैं पूछता हूँ, कह देती है 'निरञ्जन से जब अवकाश प्राप्त होता तब ही तो कलाकार को देखती।' कहने को बीस वर्ष की हो चुकी है। बड़ी अल्हड़ है। किसी बात का ज्ञान ही नहीं," रूखी हंसी हंसकर विजयसिंह एक सांस में इतना कह गये।

अब मोहन ने अपने नेत्र उठाकर सामने देखा। रानी तथा किरण उसकी ओर एकटक निहार रहे थे। किरण भली प्रकार उसके मुख को देखकर आश्चर्य से हस दिया और उसके मुख से सहसा निकल ही तो पड़ा, "चाचा जी, यह मोहन तो मेरा सहपाठी है। एफ़० ए० तक तो हम दोनों संग-संग शिक्षा प्राप्त करते रहे थे। क्यों मोहन, मेरा अनुमान ठीक है न? आनन्दगढ़ के कॉलेज में हम दोनों ने पंचम श्रेणी से पढ़ना आरम्भ किया था न?"

"हां किरण, तुम्हारा अनुमान सत्य है," लज्जा भरे नेत्रों से

मोहन ने उत्तर दिया।

"चाचा जी, मोहन से पूछ लीजिए कि हम दोनों में कितनी घनिष्ट मैत्री थी। हर समय साथ-साथ रहते थे। बस समझ लीजिए केवल सोते ही समय साथ छूटता था। यहां तक कि इनके सम्बन्धी हम दोनों की घनिष्ठता देखकर नाना प्रकार की आलोचनायें किया करते थे। परन्तु हमें इसकी तनिक भी परवाह न थी," प्रफुल्लित हृदय से किरण ने अपना व्याख्यान दे डाला।

"चलो यह भी अच्छा हुआ। बिछुड़े हुए फिर मिल गये। अब तुम्हें यहीं रहकर मेरी सहायता करनी पड़ेगी। भैया को मैं इसके लिये लिख भेजूँगा," मुस्कराकर विजयसिंह बोले।

"तो मोहन, एफ० ए० करने के पश्चात् तुम कहां लोप हो गये? मैंने भी आगे नहीं पढ़ा। मन ही नहीं लगा," मुस्कराते हुए किरण ने कहा।

"पिता जी की दशा बड़ी शोचनीय होगई थी। इसी कारण ग्राम में अपने घर जाना पड़ा। फिर जब वह स्वस्थ हो गये तो उस समय मेरी बैठक कवियों, लेखकों, संगीतज्ञों तथा चित्रकारों के साथ होने लगी। बस मेरी रुचि उसी ओर बढ़ गई और मैंने आगे की शिक्षा के विषय में विचारना तक स्थगित कर दिया," नम्रता-पूर्वक उसने उत्तर दिया।

"घर का प्रबन्ध कैसे करते थे?" विस्मयपूर्वक किरण ने प्रश्न किया।

"मैं किरण! मुझे घर की लेशमात्र भी चिन्ता न थी। बस पिता जी ही करते-धरते रहे, अब भी वे कर रहे हैं," सीधे-सादे ढंग से वह बोला।

अरे भलेमानुस, अपनी स्त्री को तो वहां छोड़ आये होते,"

हंसकर किरण ने कहा।

"क्या करूं किरण, वह तो मेरे बिना रह ही नहीं सकती। स्वयं चली आई। मैंने भी आपत्ति नहीं की। कारण कि रम्मन (छोटा भाई) तथा उसकी स्त्री भी तो वहीं हैं," लज्जापूर्वक उसने उत्तर दिया।

"अब यह बताओ कि तुम्हारा ध्येय क्या है?" यह किरण का तीसरा प्रश्न था।

"मैं यहां इस कारण और रुक गया हूँ कि जनता को यह भली प्रकार बता दूं कि कला क्या है? उसका कितना महत्त्व है? चित्र-कला तथा नृत्य-कला कविता तथा संगीत से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। राजकुमारी एक सफल चित्रकर्त्री हैं और देवदासी सफल नृत्य-प्रदर्शन करने वाली। कमला मेरे विचारों को स्पष्टतापूर्वक चित्रित कर देती है और देवदासी उनको अपने प्रत्येक अंग द्वारा प्रदर्शित कर देती है। इस बार कमला के पांच चित्र मैंने कला-प्रदर्शिनी में भिजवाये हैं और प्रत्येक के नीचे कविता लिख दी है," उत्साहित होकर वह बोला।

"हां ठीक! कल ही काश्मीर से दो हज़ार रुपये का पुरस्कार आया है। वहां पर कमला के सभी चित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है," गद्‌गद् कण्ठ से रानी बोली।

"वे चित्र किसने बनाये थे, मोहन ने अथवा कमला ने?" चंचल नेत्रों को नचाकर किरण ने प्रश्न किया। उसका यह प्रश्न मर्मभेदी था। अब किरण के हृदय में मोहन के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया था।

"कमल ने, परन्तु वास्तव में परिश्रम अपने कलाकार का अधिक था," गर्व से विजयसिंह ने उत्तर दिया। किरण इस वाक्य

से जल-सा गया।

"राजन्, आप मेरी प्रशंसा व्यर्थ ही करते हैं। मैं हूं ही किस योग्य? परिश्रम करने वाले ने अपने परिश्रम का प्रतिदान प्राप्त कर लिया। उसमें मेरा क्या था?" सरलतापूर्वक मोहन ने कहा।

"नहीं कलाकार, अब मुझे भली प्रकार विश्वास होगया है कि चित्रकला, नृत्यकला, कविता तथा संगीत ये सब परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।" नम्रतापूर्वक विजयसिंह ने सराहना-सी की। वह मोहन की ओर श्रद्धा से देख रहे थे।

"आज मुझे अपनी साधना सफल हुई दीखती है। यह मैं प्रत्येक व्यक्ति के मुख से सुनना चाहता हूँ," प्रफुल्लित होकर मोहन ने कहा। उसका हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा था। वह उस समय अपनी सारी व्यथा भूल गया था।

"ऐसा ही होगा कलाकार, ऐसा ही होगा। सच्ची लगन से किया गया कार्य कभी निष्फल नहीं जाता। हां सुनो, यह तो सब पीछे होता रहेगा। इससे पूर्व यह बताओ, तुम्हें हुआ क्या है?" अनुरोध-पूर्ण शब्दों में विजयसिंह ने प्रश्न किया।

"कुछ जी भर्राया-सा रहता है। सिर चकराया-सा रहता है। ठीक हो जायेगा कल परसों तक। चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं," बात टालते हुए मोहन बोला। उनके उस प्रश्न से उसके हृदय के तार झंकृत हो गये।

"तो फिर आज राजवैद्य को भेज दूं?"

"नहीं राजन्, कहीं ऐसा न कर बैठियेगा," हड़बड़ाकर मोहन ने कहा।

"कारण?" भृकुटि चढ़ाकर उन्होंने प्रश्न किया।

"मेरे यहां वैद्यों की औषधि से काम नहीं चलता," नम्रता-

पूर्वक उसने उत्तर दिया।

"यह भी मोहन तुमने अच्छी कही," ठहाका मारकर किरण हंस पड़ा।

"इसमें हंसने की कोई बात नहीं किरण! अपने अपने विश्वास की बात है," गम्भीरतापूर्वक विजयसिंह ने किरण से कहा और फिर मोहन की ओर आकृष्ट होकर वह बोले, "जैसे ही तुम्हारा जी हल्का हो, चले ही आना।

"हां कलाकार, तुम्हारी अनुपस्थिति अब अति दुखप्रद प्रतीत होती है," बीच में रानी बोल उठी।

"आप निश्चिन्त रहिये। मैं शीघ्र से शीघ्र आने का प्रयत्न करूंगा।"

"अच्छा कलाकार, तो अब हम चलते हैं। यदि डाक्टर की आवश्यकता हो तो उसको भी भेज दिया जाये।" कहते हुए विजयसिंह उठ खड़े हुए। किरण तो विजयसिंह के इस व्यवहार से जल उठा था। अब मोहन उसके नेत्रों में खटकने लगा था। वे तीनों चलने के लिये उद्यत हुए।

"नहीं राजन्, प्रायः अधिक औषधि का प्रयोग हानिकारक हो जाता है। यही मैंने देखा है," नम्रतापूर्वक मोहन ने कहा।

"कलाकार, मैं तुम्हारी बात क्या समझूं?" हंसकर विजयसिंह बोले।

"मैं भला हूं ही किस योग्य?" लजाते हुए वह बोला।

"योग्य पुरुष यही कहा करते हैं, कलाकार!" गम्भीरतापूर्वक विजयसिंह बोले।

"चाचा जी, आप भी बस प्रशंसा करते चले जाते हैं। वह भी मुझसे छोटे व्यक्ति की," घृणापूर्ण शब्दों में किरण बोल उठा।

"हां किरण, तुम अब तो आ ही गये हो। कभी कभी आया करो न," आग्रह-मिश्रित स्वर में मोहन बोला।

"तुम्हारे पास न आऊंगा तो जाऊंगा कहां। अजी अभी मेरी यहां किसी से जान-पहचान ही नहीं," हंसकर किरण बोला।

"अब सन्ध्या हो रही है। हम सब चलते हैं।" कहकर तीनों कमरे से बाहर निकल गये। मोहन ने अपने दोनों हाथ जोड़कर 'प्रणाम' कहा तथा फिर अपनी कुर्सी पर लेट गया।

नीचे आंगन में मालती निरञ्जन को खिला रही थी। विजयसिंह ने ठहरकर उससे प्रश्न किया, "क्यों पुत्री, क्या हो गया है कलाकार को ?"

"आपसे बताया तो था कि तीन दिन से कहीं गये-आये नहीं। बस भोजनादि से निवृत्त होकर अपने कमरे में जा पड़ते हैं," नम्रतापूर्वक वह बोली।

"तुमसे कुछ बातें नहीं होतीं ?" व्यग्रतापूर्वक विजयसिंह ने दूसरा प्रश्न किया।

"होती तो अवश्य हैं, परन्तु कुछ विचारों में डूबी हुई-सी।"

"हां पुत्री, कलाकार जो ठहरा। सरस्वती की उस पर असीम कृपा है। ईश्वर करे वह इसी प्रकार सदा उन्नति के शिखर पर चढ़ता रहे।"

"सच पूछिये, राजन्! मुझे तो उनके इस व्यवहार से चिढ़ सी हो गई है," कुछ ऊबती हुई मालती बोली।

"ऐसा नहीं कहा करते। पुत्री, तू बड़ी भाग्यशालिनी है!" उन्होंने उसे समझाने का प्रयत्न किया।

मालती श्रद्धापूर्वक उनकी ओर देख रही थी।

"निरञ्जन को ही कुछ क्षण के लिए भेज दिया करो। जी

बहल जायगा। क्या कहूँ, तुम सबसे तो अत्यन्त प्रेम होगया है। एक दिन भी न देखूँ तो जी अकुला उठता है," भर्राये हुए कण्ठ से वह बोले।

"यह आपकी कृपा है राजन्," कृतज्ञतापूर्वक वह बोली।

"अच्छा, बड़ी देर होगई। अन्धकार बढ़ रहा है। चलते हैं," कहकर रानी तथा किरण के साथ वह वहां से चल दिए।

[११]

मोहन तन्मय होकर अपने कमरे में गा रहा था। मालती रसोईघर में भोजन बना रही थी। गायन क्या था हृदय की व्यथा थी। गायक अपना दुख ईश्वर के सामने रख रहा था—

जीवन में यह दुख क्यों आया ?
तुमने यह क्यों भेद छिपाया ?
माया जाल बिछा करके क्यों
मुझसे ऐसा कार्य कराया ?
क्या तेरी यह रीति प्रभू जो
दारुण दुख मुझको पहुँचाया।
जीवन में यह दुख क्यों आया ?
तुमने यह क्यों भेद छिपाया ?
चला जा रहा था मैं यों ही
आनन्द – सागर में इठलाता !
अरे बिगाड़ा क्या था मैंने
जो मुझको दोषी ठहराया।
जीवन में यह दुख क्यों आया ?
तुमने यह क्यों भेद छिपाया ?

अभी उसने अपनी कविता का वेदना-मिश्रित स्वर बन्द ही

किया था कि मालती का स्वर, 'अजी, सुनते हो कोई पुकार रहा है,' उसके कानों में पड़ा।

"अच्छा अच्छा देखता हूँ," कहकर वह कुर्सी से उठा तथा खिड़की से झांकते हुए उच्च स्वर में बोला, "कौन है?"

"अजी कलाकार जी, मैं हूँ किरणसिंह," हंसकर नीचे खड़े हुए किरण ने उत्तर दिया।

"अजी वाह, चले आओ न," कहकर मोहन अपनी कुर्सी पर आ बैठा।

किरण ने उसके आदेशानुसार वहां प्रवेश किया और निकट की कुर्सी पर बैठता हुआ वह बोला, "मोहन, राजभवन में अकेले बैठे-बैठे जी घबराया। सोचा, चलूँ तुम्हारे पास ही गप्प-शप्प लड़ाऊं।"

"क्या भाभी जी कहीं गई हैं?" मुस्कराकर मोहन ने प्रश्न किया।

"नहीं भाई, उनको तो घर के कामों से ही छुट्टी नहीं मिलती।"

"अच्छा किया मित्र, जो चले आये। मैं भी तो अकेला बैठा बैठा ऊब रहा था," कहकर उसने दीर्घ निश्वास छोड़ दी।

"अच्छा मोहन, भाग्य ने तुमको यहां खूब पहुँचाया। कमला अब एक सफल चित्रकार बन गई है। कल से आज तक मैंने उसके दस बारह चित्रों को भली प्रकार देखा है। उन्हें देखकर यह अनुभव किया, मानों उनमें चित्रित प्राणी सजीव हों और कुछ बोलना ही चाहते हों। बड़ी उन्नति की है उसने," मर्म-भेदी नेत्रों से देखता हुआ वह मुस्करा दिया एवं उसके मुख पर अपनी दृष्टि स्थिर कर दी।

"करनी ही चाहिये। फिर जिसमें सच्ची लगन होगी वह

अवश्य उन्नति कर लेगा। बस कोई उसका योग्य सहकारी हो। वह उन्नति के शिखर पर शीघ्र ही पहुंच जायगा। एक सफल कलाकार बन जायगा।"

"मोहन, बात तो अब तुम बड़े पते की करते हो। पहले तो तुम ऐसे न थे। भली प्रकार किसी से बात भी न कर पाते थे। बुद्धुओं की भांति बैठे रहते थे," हंसकर वह बोला।

"यह सब ईश्वर की कृपा है, किरण," लज्जा भरे नेत्रों से वह मुस्करा दिया।

"अच्छा, तो तुम ईश्वर को भी मानते हो?" प्रश्नसूचक नेत्रों से उसकी ओर देखते हुए किरण ने पूछा।

"क्यों नहीं? सारा विश्व उसी शक्तिमान् के आधीन तो है," बड़े बड़े नेत्र झपकाकर वह मुस्करा दिया एवं किरण के मुख पर एक दृष्टि डाली।

"जब तुम ऐसे विषय पर आये हो तो आज कुछ निर्णय हो जाना चाहिये। हृदय में बोझ न रह जाय," कहकर वह तनकर बैठ गया।

"मुझे भी कोई आपत्ति नहीं। अच्छी ही बात है," प्रसन्नतापूर्वक उसने अपनी स्वीकृति दे दी।

"तो सर्वप्रथम यह बताओ कि ईश्वर है क्या?"

"एक असीम शक्ति।"

"क्या तुम इस शक्ति का अनुभव करते हो?"

"ऊंहुंह" सिर हिलाकर उसने उत्तर दिया।

"अच्छा, यह बताओ सारे कर्म उसी की इच्छा से होते हैं न? अर्थात् जो कुछ वह कराता है वही मनुष्य करता है। तुम्हारा इस सम्बन्ध में क्या मत है?"

"मैं तुम्हारे कथन से सहमत हूँ।"

"तो जितने बुरे कर्म मनुष्य करता है। वह भी ईश्वर कराता है ?"

"नहीं।"

"कारण ?"

"उसने मनुष्य को बुद्धि दी है जिससे वह अच्छे तथा बुरे कर्मों का बोध कर सकता है। फिर जब वह कोई अनुचित कार्य करने चलता है तो संघर्ष की दीवार उसके तथा कर्म के मध्य में उपस्थित होकर निर्णय कराने लगती है—यह कर्म तेरे लिए उचित नहीं। तो बताओ यदि वह प्राणी उस दीवार को लांघकर उस अनुचित कार्य के वशीभूत हो जाता है तो इसमें ईश्वर कब दोषी हुआ ?"

"अच्छा एक बात और। यह बताओ कि कलाकार बनते कैसे हैं ?"

"कलाकार बनते नहीं, वरन् कोई भी कला किसी को कलाकार बना देती है।"

"तो मैंने न जाने कितने उपन्यास तथा अनगिन काव्य पढ़ डाले, परन्तु मैं लेखक अथवा कवि कुछ भी तो नहीं बन सका।"

"तुमने उन्हें कला की दृष्टि से नहीं देखा होगा।

"वह कैसे ?" आश्चर्य की मुद्रा में उसने प्रश्न किया।

"आजकल हर एक व्यक्ति उपन्यास आदि समय व्यतीत करने के लिये पढ़ता है, कला की दृष्टि से नहीं।"

"समझा। अच्छा मोहन यह तो बताओ कि अब कब से तुम राज-सभा में जाओगे ? मैं भी तो तुम्हारी कला देखूँ।"

"कल-परसों तक और रुक जाओ।"

"अजी तुमने न जाने कौन-सा टोना कर दिया है कि सारे

सभासद् तुम्हें जपा-सा करते हैं। यदि कमला से कुछ कहो तो कह देती है, कलाकार आजायें तब···," मुस्कराकर वह बोला।

कमला का नाम सुनकर मोहन को ऐसा लगा मानों उसके हृदय में किसी ने सुई चुभा दी हो। एक टीस सी उठी उसके मानस में। समस्त शरीर में विद्युत्-सी दौड़ गई और उसके हृदय के तार झंकृत हो उठे। वह कुछ न बोला।

"तुम दोनों झक्की हो," मालती ने वहां आकर दोनों को सम्बोधित करते हुए कहा।

"कारण ?" मोहन ने विस्मयपूर्वक उसके मुख पर अपने नेत्र गड़ा दिये। मानों वह अपने प्रश्न का उत्तर चाहता हो।

"अजी, साढ़े ग्यारह बजे दिन से झक लड़ाते-लड़ाते सन्ध्या कर दी, फिर भी आपकी बातें समाप्त नहीं हुईं। लो कुछ जलपान कर लो। सब पच गया होगा," मुस्कराकर उसने तश्तरी मेज पर रख दी और मेज उन दोनों की ओर खिसका दी।

"हां मोहन, वार्तालाप में समय का ध्यान नहीं रहता," मुस्कराकर किरण बोला।

"यही दशा मानव-जीवन की है। जब उसे सुख प्राप्त होता है तो वह बिना किसी चिन्ता के आनन्दपूर्वक अपने दिन बिताने लगता है। जब कभी दुःख उसे ठेस लगाता है तो वह चौंक-कर कहता है, 'अरे, इतनी आयु व्यतीत कर दी, अब ?'— परन्तु यदि वह धैर्य का सहारा छोड़ देता है तो उसके लिये एक-एक क्षण काटना कठिन हो जाता है।"

"होगा, अरे जल्दी चाय पियो, नहीं तो तुम्हारी मालती रुष्ट हो जायेंगी," हंसकर किरण ने आदेश दिया और फिर तत्काल ही एक लड्डू उठाकर मुंह में रख लिया।

[१२]

"बिजली !" केश संवारती हुई कमला ने अपने कमरे में चाकरानी को बुलाया।

"आई, रानी बिटिया," कहती हुई बिजली उसके सामने जा खड़ी हुई।

"कलाकार के यहां से निरञ्जन को तो ले आ। शीघ्र आना,"

"तो क्या आज तुम नहीं जाओगी, काहे रानी बिटिया ?" वह प्रश्न कर बैठी।

"आज मेरा जी अच्छा नहीं, इस कारण न जा सकूंगी।"

"अच्छी बात है। मैं अभी जाती हूँ," कहकर वह कमरे से बाहर हो गई। कमला भी अपनी शय्या पर स्तब्ध बैठ गई और अतीत की सारी घटनाओं पर विचार करने लगी। आज उसे मोहन का वियोग असह्य हो उठा था। चार दिवस व्यतीत हो चुके थे, उसने उसकी झलक तक भी न देखी थी।

जिस प्रकार कि पराजित व्यक्ति कहीं किसी प्रकार आश्रय तथा विश्राम चाहता है उसी प्रकार कमला ने निर्णय किया कि मोहन अपना हो चुका है। उसकी प्रत्येक वस्तु भी अपनी ही हुई। निरञ्जन भी अपना ही पुत्र हुआ। उसे यहां बुलाकर उसी के साथ मन बहलाया जाय। शायद इसी से हृदय को विश्राम प्राप्त हो सके। कहा जाता है कि बालक से भी हृदय को धैर्य प्राप्त होता है। अतः उसने निरञ्जन को बुलाना ही उचित समझा।

"रानी बिटिया, लो निरञ्जन आगया," कहती हुई बिजली उसके सम्मुख आकर खड़ी होगई।

"ला," कहते हुए बिजली की ओर अपने दोनों हाथ कमला ने बढ़ा दिये। बिजली ने तत्काल ही निरञ्जन को उसके हाथों में

दे दिया। उसने उसे अपने वक्षस्थल से कसकर लगा लिया। उसका मातृ-प्रेम उमड़ पड़ा और उसी के आवेश में उसने उसके कपोलों पर अनगिन चुम्बनों की छाप लगा दी। प्रेम का स्रोत फूट निकला और मुख से निकल ही तो पड़ा, 'उनका पुत्र तो मेरा पुत्र। वह भी तो मेरे हैं।' चुम्बनों की छापों से बालक निरञ्जन घबरा-सा उठा और अबोध स्वर से बोला, "मुझे घर भेज दो।"

"मेरे लाल!" कहकर उसने आवेश में उसे अपने हृदय से लगा लिया और संभलकर प्रेम-मिश्रित स्वर में पूछा, "क्यों निरञ्जन, क्या मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती?"

"घर पर अच्छी लगती हो," अबोधतापूर्वक उसने उत्तर दिया।

"मेरे घर के दीपक, मेरे लाल!" कहकर प्रेम में वह विह्वल हो उठी एवं उसी के वशीभूत होकर फिर उसका चुम्बन ले लिया। उसके हृदय में मातृ-प्रेम की हिलोरें उठ रही थीं। वह उन्मादिनी-सी हो उठी और फिर कुछ संभलती हुई प्रेम से बोली, "क्यों निरञ्जन, दो दिन से तुम यहां आये क्यों नहीं? क्या तुम्हारी अम्मा ने मना कर दिया था यहां आने को?"

"नहीं तो। तुम भी तो नहीं आईं," पूर्व की भांति भोलेपन से बालक बोला।

"मेरे लाल, मैं कैसे बताऊं कि मैं तुम्हारे लिये कितनी व्याकुल रहती हूँ। चलो तुम्हें चिज्जी दूं," कहकर उसे अपनी गोद में लिए हुए वहां से चल दी। नीचे दालान में पहुंचकर उसने किरण तथा रानी को बैठे हुए वार्तालाप करते हुए देखा। वह बालकों की भांति मुँह बनाकर बोली, "मां!"

"क्या है कमल ?" उसके मुख की ओर अपने नेत्र उठाकर रानी ने पूछा ।

"अपने लाल को कुछ दो मां," पूर्व की भांति मुँह बनाकर वह फिर बोली । बड़ा अनुरोध था उसके उस वाक्य में ।

"देखिए न चाची जी, कमला बालकों से कितना प्रेम करती है," मुस्कराकर किरण बोला । वह चंचल नेत्रों से कमला की ओर निहार रहा था ।

"हां किरण, चाहे जिसका भी बालक हो, इसे मिल भर जाये; फिर देखो उसी में रम जायेगी," किरण की सराहना करती हुई रानी बोली ।

"मैं तो कहता हूं, चाची जी, जब इसके होंगे तब तो मैं समझता हूँ यह पागल हो जायेगी । यदि इसका कोई बालक ले गया तो," मुस्कराकर वह बोला ।

"तो भय्या समझ लो यही मेरा पुत्र है । कितना अबोध है," मुंह बनाकर वह बोली तथा उसके (निरञ्जन के) कपोलों पर प्रेम से तीन-चार चुम्बन अंकित कर दिये ।

"हां रे किरण, निरञ्जन को हमारे यहां जन्म लेना था । कितना सुन्दर बालक है," गद्गद् कण्ठ से रानी बोली ।

"तो अपना कलाकार क्या हम सबसे कम है ? मैं तो कहती हूँ कि वह हम सबसे कहीं श्रेष्ठ है," उत्तेजित होकर कमला बोली ।

"हां भई ! तुम्हारी दृष्टि में वह न श्रेष्ठ होगा तो मेरी दृष्टि में होगा । यदि कहीं वह कुँवारा होता तो······।" किरण भी उत्तेजित हो उठा था ।

"होगा होगा । तुम दोनों भाई-बहन बस छोटी-छोटी सी बातों पर झगड़ने लगते हो," कहती हुई रानी उठ खड़ी हुई और

निरञ्जन को कमला की गोद से लेकर समीप के कमरे में चली गई। कमला उसकी ओर निहारती रह गई। किरण उसके मुख की आभा देखता बैठा रह गया।

कुछ क्षण तक वहाँ स्तब्धता का साम्राज्य रहा, परन्तु किरण ने उसे भंग करते हुए कहा, "सुनो कमला, मोहन में कौन सी ऐसी विशेषता है, जिसकी तुम प्रशंसा करती हो? न आकृति ही उसकी इतनी सुन्दर है और न कुछ और ही।" किरण के हृदय के द्वेष का बांध अब टूट गया था।

"भय्या, मनुष्य की सुन्दरता उसकी योग्यता तथा विशेषता हैं। यह ऊपरी चटक-मटक तो केवल क्षणिक है। फिर अपने कलाकार में कौन से दोष हैं? क्या बुराई है उसमें? कुरूप भी नहीं है वह, बड़े बड़े नेत्र, सांवला रंग तथा सुडौल मुख। अब बोलो! यदि कहीं वह गोरा होता तो सहस्रों में एक था। ऊपरी चमड़े के रंग पर जाने में कुछ नहीं रखा है," कुछ उत्तेजित होकर वह इतना कह गई।

किरण स्तब्धतापूर्वक उसकी ओर देख रहा था। उसके पास उसका कोई उत्तर न था। वह केवल द्वेष की अग्नि में भुन रहा था। उसे अब पूर्ण प्रकार से विश्वास होगया था कि कमला मोहन से प्रेम करने लगी है।

"और भय्या, कलाकार का आचरण भी बड़ा प्रशंसनीय है। शायद किसी ही मनुष्य का आचरण उसकी भांति हो। उसे अपने पर वश है," फड़फड़ाते हुए अधरों से वह इतना कह गई।

किरण निर्निमेष नेत्रों से उसकी ओर देख रहा था। अब उसके हृदय में द्वेष के कारण क्रोध का पारावार न था। वह उसे दबाते हुए बोला, "बस, रहने दो कमला! मोहन कोई देवता नहीं। मैं

उसे भली प्रकार जानता हूँ। उसकी एक-एक नस से मैं परिचित हूँ। कहीं चाचा जी के दासत्व में न होता तो तुम उसे अपने मस्तक पर बिठा लेतीं।"

"भय्या, कलाकार किसी के दास नहीं होते। वे तो केवल कला के दासत्व में ही रहते हैं। अन्त में उनकी महत्ता की सीमा यहां तक पहुंच जाती है कि कला स्वयं उनकी दासी बन जाती है।"

"जैसे तुम मोहन की।"

"तो क्या हुआ?" क्रोध से उसके नेत्र लाल हो रहे थे।

"मोहन उनमें से नहीं है। वह तो तुम्हारे पिता की कृपा पर जीवित है। कला-वला उसमें कुछ नहीं। वह तो एक ढोंगी है," घृणा-मिश्रित स्वर में वह बोला।

"बस रहने दो भय्या" क्रोध दबाती हुई वह बोली।

"रहने दो अपनी धौंस। मोहन से तुम्हारी अपेक्षा मैं अधिक परिचित हूं। अजी आठ साल तक उसी के साथ शिक्षा प्राप्त की है। साथ-साथ ही हम लोग खेला-कूदा करते थे।"

"क्यों व्यर्थ में दोनों झगड़ रहे हो? मनुष्य सदा एक-सा नहीं रहता। उसके आचरण बदलते रहते हैं," सान्त्वनापूर्ण शब्दों में रानी ने वहां आकर कहा।

"आ रे निरञ्जन! चल अपने कमरे में चलें। यहां किसी की आंखों में खटकने से लाभ नहीं," क्रोध से फड़फड़ाते हुए अधरों से कमला ने इतना कहा तथा किरण की ओर जलते हुए नेत्रों से देखती हुई वहां से चली गई। वह निरञ्जन को अपने वक्षस्थल से चिपकाये थी। किरण भी बाघ की भांति देखता रह गया।

[१३]

आज मोहन राज-सभा में सात दिन बाद आया था। उसने

सभी लोगों के हृदय के भावों को भली भांति पढ़ा। किरण भी कुछ उतावला-सा प्रतीत होता था, परन्तु उसके हृदय में अन्य की भांति प्रसन्नता न थी। वह तो द्वेष से जल रहा था। उसी के वशीभूत होकर विचार रहा था, 'बड़ा आया मोहन कहीं का कलाकार, तनिक आवे तो देखूँ उसकी कला।' सहसा उसके नेत्र बाईं ओर गए। स्थान खाली था। नम्रतापूर्वक उसने विजयसिंह से कहा, "चाचा जी, कमला को तो बुलवाया जाय।" उसके उस वाक्य से मोहन के हृदय की तन्त्रियां झनझना उठीं। उसने स्तब्धता-पूर्वक अपने नेत्र उठाकर चारों ओर देखा। वास्तव में किरण का कथन सत्य था। हां, कुछ हटकर देखा तो मालती चिक के भीतर बैठी दिखाई दी। वह भी उसकी कला का निरीक्षण करने आई थी।

हां तो कमला को मोहन के आगमन की सूचना दी गई। वह आई बड़े प्रफुल्लित तथा उत्साहित हृदय से और अपने नियत स्थान पर बैठ गई। पश्चात उसने चित्र खींचने की सारी चीजें संभालीं। मोहन के हृदय में नवीन स्फूर्ति हुई, जैसे ही उसने कमला की ओर दबे नेत्रों से देखा। वह प्रयत्न कर रहा था कि सदा की भांति वह उसे नेत्र भरकर देखे, परन्तु लज्जा के कारण नेत्र उसकी सहायता न कर सके। वह विवशतापूर्वक सिर झुकाये बैठा रहा। सबने गद्‌गद् कण्ठ से याचना की, "कलाकार! आज अपने मन जैसा गाना गाइये। इतने दिन तक आपकी अनुपस्थिति हम सबको बड़ी अखरी।" इधर कमला भी तूलिका लेकर चित्र बनाने के लिये तत्पर हो गई। उस समय उसके आनन्द का ठिकाना न था। वह उसे उत्साहित नेत्रों से निहार रही थी। किरण उसके इस आचरण से कुढ़ रहा था। मोहन ने अपने कोकिल-कण्ठ से उन्मत्त हो मधुर स्वर-लहरी प्रारम्भ कर दी —

'प्रभु, यह कैसा मोह दिया ?
चित्त सारा मेरा हर लिया।
था डूबा मैं शरद के रस में
कर क्या बैठा ? हुआ प्रेम-वश में
समझ में न आये करूं मैं क्या ?
यह कैसा मोह दिया ?
सरस्वती का संग हुआ अब
रूठें कहीं न लक्ष्मी अब
कारण, दोनों सौत सौत हैं!
उन्हें 'सीतेश' चाहे यकजा।
प्रभु ! मोहे मार्ग दिखा।
यह कैसा मोह दिया ?

कविता का गायन समाप्त हुआ। सब आनन्द-विभोर हो उठे। सबके मुख से एक स्वर में निकला, "कलाकार, बड़ा मधुर गाते हो। व्याख्या भी प्रशंसनीय रहती है। हम सब नित्य ही आपको बाट व्याकुलतापूर्वक जोहा करते थे।"

"हां कलाकार, तुम वास्तव में कलाकार हो," किरण ने ऊपरी प्रदर्शनीय भाव से कहा। वह उसकी (मोहन की) इतनी प्रशंसा तथा इतना सत्कार होते देखकर जल उठा था मन ही मन।

उधर कमला ने भी चित्र पूर्ण कर लिया एवं उसे सबके सामने रख दिया। सबने भली प्रकार निर्निमेष-नेत्रों से देखा उसकी (मोहन की) कविता का वास्तविक चित्रण। अर्थात् उसमें एक नवयुवक भगवान् की मूर्ति के सम्मुख अपने दोनों हाथ जोड़े बैठा था। उसके मुख पर चिन्ता के भाव प्रतीत होते थे। दो

स्त्रियां उसके दोनों ओर खड़ीं उसकी ओर इकटक निहार रही थीं। उनके भी हाथ जुड़े हुए थे। एक के नीचे लिखा था 'लक्ष्मी' दूसरी के नीचे 'सरस्वती' और नवयुवक के नीचे 'कलाकार।'

सब उस चित्र का निरीक्षण कर कह उठे, "वाह राजकुमारी जी, आपकी तूलिका तो मानों कलाकार की रसना है। बिल्कुल गायन के भाव ही चित्रित कर दिये आपने।" कमला ने अपनी उतनी प्रशंसा सुनकर लज्जा से अपने नेत्र झुका लिये। विजयसिंह तथा रानी गर्वपूर्वक मोहन की ओर देख रहे थे, परन्तु मोहन में नेत्र उठाकर ऊपर देखने का साहस न था। उसका हृदय उस समय चीत्कार कर रहा था, 'मोहन, तूने कमला का कुछ चुरा लिया है। इस अपराध का प्रायश्चित्त कर।' मालती तो अपने पति की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनकर प्रसन्नता तथा गर्व से अपने को भूल-सी गई थी।

कुछ क्षण पश्चात् पूर्व की भांति मोहन कमला के साथ चल दिया। मालती प्रफुल्लित हृदय से अपने घर गई। विजयसिंह प्रजा के न्याय करने में व्यस्त हो गये। दोनों (मोहन तथा कमला) वाटिका में पहुँचे। मोहन एक शिला पर बैठ गया सिर झुकाकर, मानों वह कमला का अपराधी हो। कमला ने उज्ज्वल नेत्रों से मुस्कराते हुए प्रश्न किया, "आज यह कैसा ढंग है? इतनी लजा क्यों?"

"कह नहीं सकता," क्षीण स्वर में उसी दशा में वह बोला।

"इधर तो देखो," उसकी ठुड्डी प्रेम से हिलाकर तथा चंचल नेत्रों से उसकी ओर देखती हुई वह याचना कर बैठी।

"साहस ही नहीं होता," लज्जा भरे स्वर में वह बोला एवं उसकी ओर नेत्र उठाकर देखना चाहा, परन्तु संकोच अथवा

झिझक ने उसे पीछे हटा दिया।

"क्या कुछ चोरी की है?" मुस्कराकर चंचल नेत्रों से देखती हुई वह बोली।

"अपने हृदय से पूछ देखो," क्षीण स्वर में सिर झुकाये हुए वह बोला।

"क्या पूछूं?"

"वही, जो मुझसे प्रश्न किया था," लज्जापूर्वक उसने उत्तर दिया।

"मुझे तो कुछ आभास नहीं होता। हां यह बात अवश्य है कि हृदय चुप-चुप यह कहता रहता है कि मैं किसी की हो गई हूँ। कोई मेरा हो गया है। चाहे वह अपने को समझे अथवा नहीं," गम्भीरतापूर्वक इतना कहकर वह उसके मुख के भाव पढ़ने लगी।

"क्या कहती हो कमल? क्या तुमने मुझे नीच समझ रखा है? बोलो?" भड़भड़ाकर उसने प्रश्न किया। अब वह उत्तेजित हो उठा था। उसके आचरण पर आक्रमण जो किया गया था। अब उसने संकोच तथा लज्जा को हटाकर उसकी ओर अपनी दृष्टि उठाई। कमल उसकी ओर याचना भरे नेत्रों से देख रही थी। दोनों के नेत्र एक दूसरे से टकराये। उसने झपटकर उसके चरणों में अपना शीस झुका दिया। उसने भी अपने दाहिने हाथ से उसकी ठुड्डी पकड़कर उसके नेत्र अपने नेत्रों से मिलाये और प्रेम-मिश्रित स्वर में कहा, "यह क्या कहती हो, कमल?" मोहन का शरीर कांप रहा था। कमला करुण नेत्रों से उसकी ओर निहार रही थी, मानों कुछ याचना कर रही हो।

"मेरा संसार नष्ट न कर देना देव, मेरे नाथ! मेरे राजा! मैंने अपना अभिलषित प्राप्त कर लिया। अब मैं अपनी नय्या निरा-

धार आप पर छोड़ती हूं ," उन्मादिनी की भांति उसने इतना कहा और उसके वक्षस्थल से जा लगी।

"कमल, अब मेरे घर के द्वार तुम्हारे लिये खुले हैं। जब चाहे आसकती हो। मैं तुम्हें न रोकूंगा ," सान्त्वना से उसके सिर पर अपना हाथ फेरते हुए मोहन ने कहा।

"तो पिता जी से सारी बात कह दूं ?" हांफती हुई वह प्रश्न कर बैठी।

"कहीं कमल, इतनी शीघ्रता न कर बैठना ," धड़कते हुए हृदय से वह कह बैठा।

"कारण ?" भर्राये हुए कण्ठ से उसने दूसरा प्रश्न किया तथा अपने नेत्र उसके नेत्रों की ओर उठाये और सिर उसके वक्षस्थल से चिपका दिया। बड़ी विस्मित थी वह उसके उस कथन से।

"शीघ्रता में किया गया कार्य मनुष्य को कठिनाई में डाल देता है, कमल ," समझाने के स्वर में वह बोला।

"अर्थात् ?" भोलेपन से कमला ने पूछा।

"यही कि यदि तुमने अभी अपने पिता जी से कह दिया तो सम्भव है कि वह क्रोध से पागल हो उठें एवं उसी के प्रवाह में मुझे कोई कठोर दण्ड दे दें। वह इतने बड़े राज्य के शासक हैं। न जाने तुम्हारी बात सुनकर क्या कर बैठें ," नम्रतापूर्वक उसने उसे समझाया। वह उस समय उसकी पीठ पर अपना दाहिना हाथ फेर रहा था।

"परन्तु मैं यह भली प्रकार जानती हूँ कि मैं तुम्हारे बिना एक पल भी नहीं रह सकती। कुछ मालूम भी है, मैंने किस प्रकार एक सप्ताह व्यतीत किया है ? तुम तो बस मुझे लूटकर जा बैठे ," लज्जा भरे नेत्रों से उसकी ओर निहारती हुई वह बोली। उसके

मुख पर लज्जा की लाली दौड़ गई। उस समय वह बड़ी सुन्दर प्रतीत होती थी। दोनों के लोचन चार हुए। उसने लज्जा से मुस्करा-कर मुख नीचा कर लिया और मधुर मुस्कान छोड़ दी।

"हां कमल, तुम्हारा अनुमान बावन तोले पाव रत्ती उचित है। क्या तुमने मुझे ऐसा वैसा समझ लिया? फिर यदि भली प्रकार सोचो तो विदित हो जायगा कि इसमें दोष तुम्हारा है या मेरा?" मुस्कराकर वह बोला।

"तुम्हारा," वह बोली। अब वह कुछ चंचल हो उठी थी।

"तो तुम पृथक् हो जातीं, भाग जातीं। फिर मैं तो तुमसे सदैव दूर ही भागता रहा। तो तुमने क्यों मेरा पीछा किया?" उत्तेजित होकर वह प्रश्न कर बैठा।

"यदि तुम्हारी अभिलाषा ही यही रही हो कि वह अपना सर्वस्व लुटाकर किसी की हो जाये तो?" चंचलतापूर्वक वह मुस्करा दी।

"तो उसे उस रुख की परख कर लेनी थी," मुंह बनाकर उसने उत्तर दिया।

"यदि उसने उसकी परख कर ही ली हो तो?" नेत्र मटका-कर वह प्रश्न कर बैठी।

"तो उसका अपना सर्वस्व लुटाना उचित था," सरलता से उसने उत्तर दिया।

"यही तो मैंने किया, मेरे देव!" प्रेम-मिश्रित स्वर में वह बोली। बड़ी दृढ़ता थी उसके उस वाक्य में।

"अच्छी तरह सोच लो कमल, मेरी एक स्त्री तथा एक पुत्र भी है," गम्भीरतापूर्वक वह परीक्षा लेने के लिये तत्पर होगया।

"तो क्या एक मनुष्य दो विवाह नहीं कर सकता? फिर यह

बन्धन तो स्त्री ही के लिये है कि वह जिसके आंचल से बांध दी गई, उसी की हो गई। अन्य की ओर आंख उठाना भी पाप है," नम्रतापूर्वक कमला ने कहा।

"अच्छा, अब बहुत हो चुका। चलो अपना कार्य आरम्भ करो," मोहन ने कहा।

"आज किसी भिखारिन की कविता...।"

"अच्छी बात है। चित्र खींचने की वस्तुएं तो संभालो," कह कर वह निकट की शिला पर बैठ गया। उसने भी तत्काल ही सारी वस्तुएं भली प्रकार सजाकर कहा, "आरम्भ करो।"

"जो आज्ञा," मुस्कराकर उसने उत्तर दिया एवं गाना आरम्भ कर दिया—

है चली आती भिखारिन, शुष्क कुन्तल-केश खोले!
वह भिखारिन दीन हीना,
आरही आवरण — हीना
भूख के मारे अरे, उसके बिलखते लाल भोले!
पास से निकला बटोही
चाप सुन वह आह रोई
'हो भला सबका' भिखारिन के सिसकते प्राण बोले!
एक पैसे का सहारा—
दो, भला होगा तुम्हारा
चल दिये उसके चरण यों, डगमगाते मौन हौले!

जैसे ही मोहन ने कविता समाप्त की वैसे ही कमला ने अपना रेखा-चित्र उसके सामने रख दिया और मुस्करा दी। मोहन ने उस चित्र का भली प्रकार निरीक्षण कर गम्भीरतापूर्वक कहा, "कमल, यह चित्र तो तुम्हारा बड़ा प्रशंसनीय है। तुम्हीं देखो

कितनी दीनता दृष्टिगोचर हो रही है। यह तो मेरे एक-एक शब्द का वास्तविक चित्रण है। अभी तक तुमने ऐसा रेखा-चित्र नहीं बनाया था। तनिक देखो तो यह कैसी दीनता से अपना कर फैलाये हुए है। कितनी दुर्बल प्रतीत होती है अपने हाड़-पञ्जर के कारण। ये फटे वस्त्र!"

"अजी, बस अधिक प्रशंसा रहने दो। है तो आपका ही प्रताप न," अबोधतापूर्वक वह बीच में ही बोल पड़ी।

"कमल, उपयुक्त रंग भरकर इसे कला-प्रदर्शिनी में भेज दो।"

"जो आज्ञा," कहकर वह मुस्करा दी।

"अच्छा, अब चलूँ। पांच बज गये हैं," कहकर वह चलने को उठ खड़ा हुआ।

"तो क्या आज राज-मन्दिर में भी......?"

"हां। क्यों?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही प्रश्न किया। उस दिन सायंकाल नहीं गये थे इसी कारण पूछा। और सुनो, भय्या को आपके आचरण पर सन्देह होगया है। वह आपका इतना आदर-सत्कार देखकर द्वेष-सा करने लगे हैं।"

"करने दो हमें इससे क्या?" लापरवाही से वह बोला और घर की ओर चल दिया।

वह भी अपनी सारी वस्तुएं लेकर अपने कमरे में आई और भिखारिन के चित्र को रंगने में व्यस्त होगई।

[१४]

उसी सायंकाल राज-मन्दिर में—

उसी सायंकाल राज-मन्दिर में नित्य की भांति आनन्दगढ़ की प्रजा समारोह के साथ एकत्रित हुई। बड़ी प्रसन्न थी वह उस

समय। प्रत्येक व्यक्ति की जिह्वा पर यही था—"आज फिर कलाकार आयगा, वह अपने कोकिल-कण्ठ से भजन गायेगा और हम सब कीर्तन करेंगे।" बड़ा उल्लास था वहां सब में। देवदासी तथा अन्य दर्शक सभी अपने-अपने स्थान पर विराजमान थे। द्वार की ओर व्याकुलतापूर्वक सबके नेत्र लगे थे। कलाकार मोहन के आने की प्रतीक्षा में सब बेचैन थे। उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे युगों के पश्चात् उसे देखेंगे।

जब साढ़े सात बजने में सात-आठ मिनट रह गये, तो विजयसिंह ने अपना मुख कमला के निकट ले जाकर क्षीण स्वर में पूछा, "क्यों कमल, आज आयगा न अपना कलाकार?"

देवदासी ने उस दृश्य को देखकर अपने कान द्वार की ओर लगा दिये। वह भी भीतर ही भीतर अधीर अवश्य हो रही थी, परन्तु उसका प्रदर्शन न कर रही थी। उसका हृदय भी उल्लास से परिपूर्ण था एवं उसने यह निर्णय कर डाला था—'कलाकार! यदि तुम आज आगये तो मैं अपने को भूलकर तुम्हारे एक-एक शब्द पर थिरकूँगी। किसी की चिन्ता न करूंगी।"

"कहा तो था पिता जी," नम्रतापूर्वक क्षीण स्वर में कमला ने उत्तर दिया।

देवदासी ने उस उत्तर को भली प्रकार सुना और उसके दुखित हृदय को इससे कुछ शान्ति मिली। अब उसने अपने नेत्र राधाकृष्ण की मूर्तियों की ओर घुमा दिये।

किरण भी विजयसिंह के एक ओर मौन बैठा देवदासी के रूप-लावण्य को स्थिर नेत्रों से देख रहा था। उसके हृदय में मोहन के लिए बिल्कुल व्यग्रता न थी। वह सोच रहा था, "देवदासी कितनी सुन्दर है। इससे घनिष्ठता उत्पन्न कर अपना स्वार्थ सिद्ध

करना चाहिये। इसे तो किसी राज-कुल में उत्पन्न होना था," सहसा उसके हृदय में शंका उत्पन्न हुई, "कहीं यह भी मोहन से प्रेम न करती हो?" बस वह उत्तेजित होकर जोर से कह उठा, "यदि ऐसा है तो दोनों को समझ लूंगा।"

"क्या हुआ, किरण? किसे समझ लोगे? कौन हैं वे दोनों?" भड़भड़ाकर विजयसिंह एक साथ किरण से प्रश्न कर बैठे।

"कुछ नहीं, चाचा जी। कुछ नहीं। तनिक अपने घर के पड़ौसियों का ध्यान हो आया था," लज्जा भरे नेत्रों से वास्तविकता को छिपाते हुए उसने उत्तर दिया। उसे अपनी स्थिति का ध्यान हो आया था।

कलाकार के आते ही समस्त मन्दिर में हलचल मच गई। सबके हृदय हर्ष से परिपूर्ण हो उठे। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हो रहा था मानों उनकी खोई हुई वस्तु प्राप्त हो गई हो और वह भी वर्षों के पश्चात्।

"आगये, कलाकार? मन्दिर तुम्हारे बिना शून्य प्रतीत होता था। यह बात नहीं थी कि भजन-कीर्तन न होता हो। होता अवश्य था, परन्तु इतना उल्लास न था," गद्गद् कण्ठ से पुजारी बोले।

मोहन शान्तिपूर्वक अपने स्थान पर बैठ गया। देवदासी ने बड़े आदर से हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

"नमस्ते," नम्रतापूर्वक मोहन ने प्रणाम का उत्तर दिया एवं कुछ मुस्कराने के भाव भी प्रदर्शित किये।

कमला को मोहन का यह व्यवहार बड़ा दुखप्रद प्रतीत हुआ तथा किरण को देवदासी का। वह तो अब द्वेष से जल रहा था।

"तो आरम्भ करो, कलाकार!" हर्षित होकर पुजारी जी ने याचना-सी की।

मोहन ने अपने नेत्र मूर्तियों पर स्थिर किये। खखारकर गला कुछ साफ किया और फिर गाना आरम्भ किया। वाद्य-यन्त्रों की मधुर स्वर-लहरी उसके स्वर पर चल पड़ी। देवदासी का रोम-रोम उसके एक-एक शब्द पर थिरकने के लिये उतावला हो उठा। वह अलाप रहा था—

'हां! राधाकृष्ण सब गाना!
हां! राधाकृष्ण सब गाना!
कृष्ण बिना धीरज नहिं मिलता
मन को है बहलाना!
हां! राधाकृष्ण सब गाना!'

सब मद-मत्त होकर झूम रहे थे। देवदासी अपने को भुलाकर उसके शब्दों पर नृत्य कर रही थी। केवल किरण का ध्यान देवदासी पर था। गायन चल रहा था—

'आंखें बिछाता चलूं।
आंसू बहाता चलूं।
दर्शन के लिए सीख रखूँ—
कितने कष्ट उठाना।
राधाकृष्ण सब गाना!
हाथों को जोड़ कर।
पलथी को मार कर।
आंखों को बन्द कर!
मन प्रभु में लगाना!
राधाकृष्ण सब गाना!
आशा के दीप जले।
भक्त कृष्ण से मिले।

कट गई विपदा की रात—
कृष्ण के गुण गाना !
राधाकृष्ण सब गाना !

भजन समाप्त हो चुका था। बाजे बज रहे थे। सभी श्रोतागण भक्ति-रस में झूम रहे थे। उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था मानों उस समय भी मोहन का मधुर स्वर उनके कानों में गूंज रहा हो; परन्तु किरण सचेत था। देवदासी भी भजन की समाप्ति के उपरान्त नृत्य करती रही, परन्तु उसे जैसे ही उसके समाप्त होने का आभास हुआ, वह मोहन की ओर तृषित तथा कृतज्ञ नेत्रों से देखती हुई अपने स्थान पर जा बैठी। किरण ने उसकी भाव-भंगिमा को भली प्रकार देखा एवं अपनी शंका को सत्य होती अनुभव किया।

सब श्रोतागण अब सचेत हो चुके थे। पुजारी जी ने मोहन से याचना की, "कलाकार, आरती गाओ। देवदासी उसके भावों को प्रदर्शित करेगी।"

"जैसी आपकी इच्छा," कहकर उसने आरती गाई। देवदासी ने प्रज्ज्वलित दीपक को थाल में रखकर अपने दोनों हाथों में लिया एवं मोहन के स्वर पर नृत्य करना आरम्भ कर दिया। वह राधाकृष्ण की मूर्ति की ओर विचित्र प्रकार से अपने नेत्र फाड़-फाड़कर देख रही थी। उसे उसमें मोहन की मोहक छवि ही दीख रही थी। वह उन्मादिनी की भांति प्रज्ज्वलित दीपकों से सुसज्जित थाल लिये थिरकती आगे बढ़ रही थी। सब स्थिरता-पूर्वक उसके उस प्रदर्शन को देख रहे थे।

अन्त में नृत्य करते-करते उसकी चेतना खोने सी लगी। आरती का गान समाप्त हो चुका था। पुजारी जी तथा किरण को

आशंका थी कि देवदासी अवश्य अचेत होकर गिर पड़ेगी। आरती का थाल गिर पड़ेगा तो अनर्थ हो जायेगा। परन्तु अपने देव को हृदय में विराजित कर उसकी दासी सच्ची लगन से नृत्य जो कर रही थी। उसकी साधना निष्फल थोड़े ही जासकती थी। जैसे ही मोहन का स्वर रुका, उसने सचेत होकर थाल राधा-कृष्ण की मूर्ति के सम्मुख रख दिया और उनके चरणों में झुककर बोली, "भगवन् कृपा करो," और फिर आकर अपने स्थान पर खड़ी होगई। देखा, मोहन अपने स्थान पर बैठा था। जैसे ही वह आरती लेकर सम्मुख आई, उसके हृदय में एक प्रकार की सिहरन-सी उत्पन्न होगई। जी में आया कि उसके चरणों में अपने को न्योछावर कर दे, परन्तु उसी क्षण वहां बैठे हुए आदमियों का ध्यान हो आया और वह संभल गई। परन्तु उसके नेत्र मोहन की अबोध छवि पर स्थिर रहे। वह मन्दिर से बाहर निकल गया। किरण सब दृश्य देख रहा था। अपने हृदय की धारणा को सत्य होती देखकर वह प्रसन्न हो रहा था।

सबने आरती के उपरान्त प्रसाद लेकर अपने-अपने घरों को प्रस्थान किया, परन्तु किरण अपने स्थान पर अविचल बैठा रहा। पुजारी जी ने उसे बिल्कुल अकेला देखकर प्रश्न किया, "क्यों जी, क्या अब भी कुछ शेष रह गया है? अब तो साढ़े दस बज गए हैं।"

"जी। मैं तनिक देवदासी से मिलना चाहता हूं," नम्रता-पूर्वक उसने अपनी अभिलाषा प्रकट की।

"आप हैं कौन?" भृकुटि चढ़ाकर पुजारी जी ने उसकी ओर अपने नेत्र घुमाये।

"अरे, आप मुझे नहीं जानते। मैं आपके राजा का भतीजा, किरणसिंह हूं। आपने मेरे विषय में सुना तो होगा ही। मैं यद्यपि

चार दिन से आया हुआ हूं, परन्तु यहां न आसका था। शायद आप मुझे नहीं पहचानते," हंसते हुए किरण ने उत्तर दिया।

"सुना तो था, परन्तु देवदासी से मिलने का प्रयोजन?" गम्भीरतापूर्वक वह फिर प्रश्न कर बैठे।

"मुझे उससे कुछ आवश्यक कार्य है, जिन पर राज का....।"

"तो प्रातः दस बजे सही," पुजारी ने उसकी बात काट दी।

"उस समय ठीक न होगा एवं यह भी सम्भावना है कि मैं उस समय कुछ भूल भी जाऊं।"

"अच्छी बात है। वह ऊपर तीसरी कोठरी में रहती है। केवल पन्द्रह मिनट आपको उससे वार्तालाप करने के लिए दिये जाते हैं," पुजारी जी घण्टे, घड़ियाल तथा अन्य वस्तुओं को यथा-स्थान रखते हुए बोले।

किरण सीढ़ियों से होता हुआ देवदासी के कमरे के द्वार पर पहुंचा। उसके पैर सहसा रुक गये और उसके अंग-प्रत्यंग में कम्पन होने लगा। पसीने के बिन्दु उसके मस्तक पर झलकने लगे। उसने सोचा, "मैं उससे कैसे बात-चीत करूंगा?' सामने देखा तो देवदासी कपड़े बदल रही थी। चन्द्रमा का प्रकाश उसकी सामने की खिड़की से आ रहा था, जिससे उसका सुन्दर शरीर कंचन-सा चमक रहा था। वह उसके अंग की गठन तथा सुन्दरता को स्तब्धतापूर्वक खड़ा देख रहा था। मन में कुभावनायें उत्पन्न हो रही थीं। हृदय उसे अपनी बना लेने को विह्वल हो रहा था। अधर उसके अधर से लग जाने के लिये ललक रहे थे, परन्तु पैर उसकी सहायता करने से मुख मोड़े हुए थे। वह खोया हुआ सा द्वार पर मूर्ति की भांति खड़ा था।

देवदासी ने अपनी खिड़की खोली ही थी कि किरण को

खांसी आगई, जिसकी आवाज से वह चौंक सी पड़ी। वह तुरन्त ही वस्त्र संभालती हुई द्वार की ओर घूमी। जब उसने किरण को अपनी ओर एकटक निहारते देखा तो। मन में आशंका सी उत्पन्न होगई। आश्चर्यपूर्वक बड़े-बड़े नेत्र निकाल कर क्षीण-स्वर में उसने प्रश्न किया, "क्यों महाशय जी, यहां आने का कैसे कष्ट किया? किस प्रकार आप यहां तक पहुंचे? क्या बाबा से आज्ञा लेकर यहां आये हैं?"

"तो तुम घबरा गईं? मैं तुम्हारे बाबा से ही आज्ञा लेकर आया हूँ," कहकर मुस्कराते हुए उसने कोठरी के भीतर प्रवेश किया एवं उसकी खाट पर बैठ गया।

"बाबा ने आपको यहां आने की आज्ञा कैसे दी?" आश्चर्यपूर्वक उसने प्रश्न किया।

"देते क्यों नहीं। मैं यहां के राजा का भतीजा जो हूँ एवं भविष्य में यहां के सिंहासन पर......।" गर्वपूर्वक छाती फुलाकर उसने उत्तर दिया।

उधर पुजारी जी भी अपने कार्यों को शीघ्रतापूर्वक समाप्त कर दबे पैरों वहां आ पहुंचे, एवं द्वार के एक ओर खड़े होकर उन दोनों की बातें सुनने के लिये अपने दोनों कानों को खिड़की पर लगा लिया।

"आपके यहां आने का प्रयोजन?" गम्भीरतापूर्वक देवदासी ने प्रश्न किया। वह अब भली प्रकार संभल चुकी थी।

"विराजिए तो।"

"कहिये," कहते हुए वह निकट के आसन पर बैठ गई।

"पुजारी जी तथा तुममें क्या सम्बन्ध है?"

"जो एक गुरू तथा शिष्या में होता है।"

"तो तुम यहां आईं कहां से ?"

"मुझे कुछ मालूम नहीं।"

"कारण ?"

"बाबा मुझे गंगा के किनारे से उठा लाये थे। उस समय मैं एक वर्ष की नन्हीं बालिका थी।"

"नाम क्या है तुम्हारा ?"

"देवदासी, परन्तु बाबा मुझे 'बाले' कहकर सम्बोधित करते हैं।"

"तुम्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान है ?"

"जी हां।"

"अर्थात् ?" मर्मभेदी नेत्रों से निहारते हुए उसने प्रश्न किया।

"मैं देवदासी हूँ। मेरा कार्य-क्रम है अपने इष्टदेव के सामने नृत्य करना। बस," कहकर उसने अपने नेत्र उसकी ओर उठाये। वह मुग्ध हो उसकी ओर निहार रहा था। उसके नेत्रों में स्वार्थ की भावना देखकर वह सिहर उठी, परन्तु बोली नहीं। वह अपने स्थान पर जैसी की तैसी बैठी रही।

"और यह मोहन तुम्हारा कौन है ?"

"मेरे इष्टदेव !"

"इष्टदेव और कलाकार !" चौंककर वह बोला।

"तो कलाकार जी का नाम...है," बात टालती हुई वह बोली।

"हां।"

"मेरे इष्टदेव का भी तो वह नाम है ?" प्रदर्शनीय मुस्कराहट से वह बोली।

"मैंने आज भली प्रकार यह देख लिया है कि तुम मोहन से

प्रेम करती हो।"

"तो क्या हुआ?" कुछ रुष्ट होकर वह बोली। "शायद आपका अनुमान उचित नहीं।"

"किरण ने आज तक कच्ची गोलियां नहीं खेलीं। वह उड़ते हुए पक्षी को पहचानता है," गम्भीरतापूर्वक वह बोला।

"आप जैसे अनुभवी न जाने कितने आये और चले गये। इस व्यर्थ के तर्क से आपका अभिप्राय क्या है, शीघ्र प्रकट कीजिए। रात्रि अधिक हुआ चाहती है," उत्तेजित होकर वह बोली।

"मैं चाहता हूँ कि तुम मोहन का ध्यान छोड़ दो।"

"ऐसा नहीं हो सकता। मैं उनकी ही तो दासी हूँ। यही बाबा ने आदेश दिया है।"

"मेरा अभिप्राय है मोहन कलाकार से।"

"जब आप किसी बात को नहीं जानते तो अपनी टांग क्यों अड़ाते हैं?"

"होगा भी। शायद मैं भूल कर रहा हूँ। यदि ऐसा ही है तो ईश्वर को मेरा कोटिशः धन्यवाद," कहकर मुस्कराता हुआ वह उसकी ओर बढ़ा और अपने दायें हाथ को उसकी ठुड्डी की ओर बढ़ाकर मुँह बनाया तथा प्रेम-भरे स्वर में कहा, "सुनो!"

वह उसकी पिशाचिनी दृष्टि तथा भावों को देखकर नागिन की भांति तड़प उठी और कड़ककर बोली, "तनिक संभलकर बातें कीजिए। ऐसा न हो कि मुझे बाबा को पुकारना पड़े।"

"नहीं, नहीं इतना कष्ट उठाने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं चला जाऊंगा। परन्तु इससे पूर्व मैं तुमसे यही याचना करूंगा कि तुम मेरे प्रेम को न ठुकराओ। मैं शीघ्र ही यहां का शासक हूंगा। तुम मेरी पटरानी होगी। इस तुच्छ घृणित नर्तकी-

जीवन से वह जीवन कहीं अधिक महत्व रखता है ।"

"किरण जी, अब आप अपनी अभिलाषा प्रकट कर चुके। मैं उसे अस्वीकार करती हूँ। आप जा सकते हैं। मैं अपना भला-बुरा स्वयं समझती हूँ।"

"अर्थात् ?"

"यही कि प्रेम कोई ऐसी वैसी वस्तु नहीं, जो हर किसी को दी जा सके। न कोई उसे बलपूर्वक ले ही सकता है।"

"ओहो !" नेत्र नचाकर वह बोला।

"जी ! अब आप जा सकते हैं। नहीं तो...।"

"अच्छी बात है, जाता हूँ। मैं फिर भी आशा करता हूँ कि तुम मेरी बात पर विचार करोगी," कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, अब आप फिर कभी यहां आने का कष्ट न करें।"

"आनन्दगढ़ के उत्तराधिकारी का इतना निरादर ! यदि यही बात है तो क्यों न आज ही मैं अपनी अभिलाषा पूर्ण करता चलूँ," कहकर पिशाचों की भांति वह उसकी ओर झपटा। वह भी विद्युत् की भांति भागकर कोठरी से बाहर होगई और ऊंचे स्वर में पुकारा, "बाबा बचाओ।"

"बाले, मत घबरा। मैं यहीं खड़ा हूँ," दीवार से सटे खड़े हुए पुजारी जी बोले। वह हांफती हुई उनसे चिपट गई।

किरण प्रदर्शनीय अकड़ से कोठरी के बाहर निकला और दोनों को देखकर गर्वपूर्वक बोला, "अच्छी बात है। ओ तुच्छ नर्तकी, मैं तुझे देख लूंगा।"

"जा जा, बड़ा आया आनन्दगढ़ के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी ! भला इसी में है कि चुपचाप यहां से चला जा। नहीं

तो इसी समय सब वारा-न्यारा कर दूंगा," भृकुटि चढ़ाकर घृणा-भरे स्वर में पुजारी जी बोले।

"अच्छा तो आपही इसके उपासक हैं। क्यों न हों!" मुँह बनाकर किरण बोला।

"निर्लज्ज, चला जा यहां से" कड़ककर पुजारी जी बोले।

"जा तो रहा हूँ; परन्तु आपसे भी यही कहूंगा कि देवदासी से मेरी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए कहियेगा," कहता हुआ वह वहां से चला गया।

-"बाबा, अब क्या होगा? यहां से भाग न चलो!" आशंका से हांफती हुई वह बोली।

"अपने इष्टदेव पर विश्वास रखो बाले! कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

"इष्टदेव तो मेरे बड़े दयालु हैं," मुस्कराकर भोलेपन से वह बोली।

"हां बाले, उन्हीं के प्रेम में विश्वास रखो। जाओ, अब सो रहो," सान्त्वनापूर्ण स्वर में वह बोले।

वह भी अपनी कोठरी में चली गई और द्वार बन्द कर अपनी शय्या पर पड़ रही। पुजारी जी ने भी मन्दिर का द्वार भली प्रकार बन्द किया तथा अपनी खाट पर जा पड़े।

× × × ×

जब किरण राज-भवन में पहुंचा और भोजनादि से निवृत्त होकर अपने शयनगृह में गया तो प्रकाशो (उसकी स्त्री) ने प्रश्न किया, "क्या बात है, नाथ? आज कुछ खिन्न से दीख पड़ते हो?"

"क्या बताऊं रानी! इस मोहन ने तो सब पर प्रेम का जाल बिछा रखा है। देवदासी भी उसी में फंस चुकी है," कहता हुआ

वह अपनी खाट पर जा पड़ा तथा दीर्घ निश्वास ली।

"देवदासी! एक तुच्छ नर्त्तकी ही रही मोहन के लिए! उनका तो समय निकट आता जाता है। कमला पर भी तो...।"

"मुझे सब पता है, रानी आओ सो जाओ।"

[१५]

दिन बीते। साथ साथ मोहन तथा कमला का प्रेम दिन प्रतिदिन दृढ़ होता चला गया। कलाकार मोहन की झिझक भी धीरे-धीरे दूर होगई। वह फिर पूर्व की भांति निष्कपट हृदय से बैठकर अपनी कविता को गाने लगा। कमला तल्लीन होकर उसके भावों को चित्रित करने लगी। यदि चित्र अधिक प्रशंसनीय होता तो कला-प्रदर्शिनी में भिजवा दिया जाता। कभी-कभी वे दोनों अपने-अपने भविष्य पर भी बातें कर बैठते।

"मुझे एक बात सताया करती है देव," क्षीण स्वर में वह कहती।

"क्या कमल?" नम्रतापूर्वक वह प्रश्न करता।

"अब क्या होगा?" भर्राये हुए कण्ठ से वह पूछती।

"कुछ नहीं," वह मीठे स्वर में उत्तर देता।

"कुछ नहीं?" उसका स्वर कुछ ऊंचा होजाता और वह आश्चर्य में पड़ जाती।

"हां हां कुछ नहीं," सान्त्वनापूर्ण शब्दों में कहकर वह मुस्करा देता।

"अर्थात्?"

"मैं जो हूँ," मुस्कराता हुआ वह उत्तर देता।

"तो तुम क्या कर लोगे?" वेदना-मिश्रित स्वर में वह प्रश्न करती।

"अब तो मेरा घर तुम्हारा हो ही चुका। मालती तथा तुम्हारी श्रेणी बराबर है। परन्तु उसके पूर्व आजाने से उसकी श्रेणी उच्च रहेगी," गम्भीरतापूर्वक वह कहता।

"तो फिर ऐसा न करूं कि सब कुछ मां ही से कह दूं?" कहकर प्रश्न-सूचक नेत्रों से वह उसकी ओर देखने लगी।

"कमल, तुम्हें इतनी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। मैं इस सबका प्रबन्ध कर लूँगा," सान्त्वनापूर्ण शब्दों में वह कहता।

"चिन्ता न करूं! देव, यह कैसे हो सकता है?" विवशता प्रदर्शित करती हुई वह पूछ बैठती।

"हां हां, कमल! प्रेम में विश्वास करो। वह सब ठीक कर देगा। फिर तुम्हें अब मुझ पर भी तो विश्वास करना चाहिये," वह उसे समझाने का प्रयत्न करता।

वह उसके वक्षस्थल से लग जाना चाहती। हृदय उसे बाहु-पाश में कसने के लिए लालायित रहता। परन्तु वह संभल जाता। वह विलास तथा कामलोलुपता के वश में होकर इतनी प्रभावित हो जाती कि अपने स्थान से तनिक दूर भी न चल पाती। उसका मुख लाल हो जाता। नेत्र मद-मत्त हो जाते। धमनियां फड़कने लगतीं। वह तृषित नेत्रों से उसकी ओर देखती रहती। कुछ कहना चाहती, परन्तु स्वर कण्ठ में ही रुककर रह जाता। उसे शरीर की तनिक सुध-बुध न रहती। वस्त्र अंगों से खिसक जाते। वह साहस बटोरकर आन्दोलित हृदय से उनको ठीक करती और याचना भरे नेत्रों से बैठी कलाकार को देखती रहती। वह उसकी यह दशा देखकर प्रभावित तो अवश्य होता, परन्तु उसी समय उठकर चला जाता। वह कुछ देर उसी दशा में डूबी बैठी रह जाती।

प्रायः ऐसा भी होता कि कमला मुस्कराकर कहती "मेरे राजा!

तुममें सहन करने की शक्ति मुझसे अधिक है।"

"किस बात की?" विस्मयपूर्वक वह प्रश्न करता।

"यही कि जब मैं विलासिता की धाराओं में बहने लगती हूँ तो तुम अपनी सारी शक्तियों को स्थिर रखते हो," लज्जा भरे नेत्रों से वह कहती।

"मनुष्य का कर्त्तव्य है कि अंधकार में गिरने से बचता रहे। अपनी दूषित अभिलाषाओं से सदा दूर रहे," दृढ़तापूर्वक वह उत्तर देता।

"अच्छा तुमने इतना धैर्य कहां से सीखा?"

"अपनी जननी से।"

"तब तो वह देवी हैं।"

"मैं क्या बताऊं, कमल! वह इतनी सरल-हृदया हैं कि सब सम्भव तथा असम्भव बातों पर विश्वास कर लेती हैं। उन्हें सभी पर विश्वास है। चाहे जैसा भी व्यक्ति क्यों न हो वह सबके दुख-सुख में भाग लेने के लिये तत्पर रहती हैं। पिता जी उनकी इस उदारता पर उन्हें प्रायः झिड़क भी बैठते हैं, इस पर वह उत्तर देती हैं, "तुम भी बस यों ही हो। अजी, कोई मेरे साथ कपट करता है तो करने दो। मैं तो नहीं करती। ईश्वर तो देखता है।' मुझसे यहां आते समय अपने नेत्रों में अश्रु भरकर कहा था, 'मेरे लाल, अपनी इन्द्रियों पर वश रखना। तुम्हारी आयु अभी भीगी मिट्टी की, भांति है। उसे जैसा चहोगे बना लोगे।' उन्मत्त होकर वह इतना कह जाता। नेत्रों में मां की याद करके अश्रु उमड़ आते और मां के दर्शन की अभिलाषा प्रबल हो उठती, परन्तु विवशता आगे पैर बढ़ाने से रोक देती।

वह भी उसके उस व्याख्यान को सुनती रहती, सहसा उसके

मुख से निकल जाता, "देव, मेरे ऐसे भाग कहां जो मैं उनके दर्शन कर सकूं।"

"सच्ची लगन होनी चाहिये, कमल," कहकर वह बात के विषय को दूसरी ओर परिवर्तित कर देता, "हां तो कमल, छोड़ो इन बातों को। अभी किरण आजायगा तो व्यर्थ में कुछ का कुछ समझकर अनर्थ करवा देगा, मेरे काले केशों में सफेदी लग जायेगी। चलो तैयार हो जाओ। मैं अपना कार्य आरम्भ करता हूँ।" गायन आरम्भ कर देता। उसकी भी तूलिका उठती। रेखायें खिचतीं और फिर उसमें रंग भर जाता। बस!

हां! एक बात अवश्य थी कि मोहन एकान्त में बैठकर सोचता, "क्यों मोहन, क्या अपनी स्त्री की प्यास को बुझाना न चाहिये? शास्त्रानुसार यह तो एक पाप है?" इस पर उसका हृदय कहता, "है तो अवश्य; परन्तु विवशता भी कोई वस्तु है। मनुष्य अपनी स्त्री की पिपासा शान्त करने के लिये ही उत्पन्न किया गया है।" तब वह फिर प्रश्न करता—" तो क्या मैं यह पाप नहीं करता जो कमल को कामातुर छोड़ आता हूँ? उसकी तृष्णा को पूर्ण नहीं करता? वह उसी के वशीभूत हो तड़पती रह जाती है।" उसका उत्तर हृदय फिर देता, "मोहन, यह तेरी भूल है। कमला तेरी अर्धाङ्गिनी है। तुझे उसकी कामनाओं को अवश्य तृप्त करना चाहिये।" वह चिल्ला पड़ता, "नहीं नहीं, मैं ऐसा कदापि नहीं कर सकता। यदि कुछ का कुछ होगया तो कमल का जीवन नष्ट हो जायेगा। वह मेरी सरस्वती है। मैं उसका पतन नहीं देख सकता।" वह हांफने लगता।

"मोहन, तू कायर है। क्यों नहीं आगे बढ़कर कह देता कि कमला तेरी हो चुकी है?" वह कहता, "मैं, कायर हूँ या

नहीं, यह समय आने पर मैं सब प्रकट कर दूंगा एवं यथाशक्ति प्रयत्न करूंगा कि वह कुपथ पर न जा सके। इतनी शीघ्रता से कार्य करने में अनर्थ होजाने की सम्भावना है। अपनी सरस्वती के लिए मैंने अपने घर के द्वार खोल दिये हैं। जब चाहे वह चली आवे। मैं उसके लिए लक्ष्मी को मना लूंगा। कारण, सरस्वती मेरी किसी भी वस्तु को अप्रिय नहीं समझती। यहां तक कि वह मेरी लक्ष्मी से भी अगाध प्रेम रखती है।" इस पर उसका हृदय गर्वपूर्वक कह उठता, "मोहन, यही पुरुषों की शोभा है। देख अपने इस निर्णय पर स्थिर रहना।" वह कहता, "अवश्य अवश्य! यह मोहन अपनी की हुई भूल के प्रायश्चित्त के लिए हर समय तत्पर है।"

उधर मालती को मोहन की कमला के प्रति इतनी घनिष्ठता असह्य हो उठी। वह अब उससे उत्तेजित होकर कहती, "स्वामी, अब तो मैं तुम्हारी तथा राजकुमारी की इतनी घनिष्ठता सहन नहीं कर सकती।"

"प्रेम में विश्वास रखो, मालती!" मुस्कराकर वह उत्तर देता।

"मुझे पूर्ण प्रकार से तुम पर विश्वास है; परन्तु कभी-कभी मेरा हृदय भ्रमयुक्त हो जाता है। बोलो स्वामी, ऐसा क्यों होता है? मैं ऐसा क्यों विचारने लगती हूँ कि कहीं तुम अपनी वासनाओं को राजकुमारी से न तृप्त करते हो? कोई बात तो अवश्य है। नहीं तो हृदय में ऐसे कुविचार क्यों उत्पन्न होते हैं?" एक सांस में वह इतना कह जाती। उसकी दशा एक अबोध बालिका की भाँति हो जाती।

"पगली कहीं की। यह तो स्वभाविक है कि कोई स्त्री अपने पति को किसी अन्य स्त्री से वार्तालाप करते तक नहीं देख सकती,"

मुस्कराकर वह उसे सान्त्वना देने के विचार से कहता।

"कारण ?" उच्च स्वर में वह फिर प्रश्न करती।

"इसलिये कि उसको सन्देह होने लगता है, कहीं उसका पति उससे तो प्रेम नहीं करता," हंसकर उत्तर देता तथा बात टालने का प्रयत्न करता।

वह (मालती) चुप तो अवश्य हो जाती, परन्तु उसके हृदय को कोई विशेष शान्ति प्राप्त न होती। अन्तर्द्वन्द्व पूर्व की भांति ही होता रहता। मोहन इस कारण ऐसा करता था कि यदि वह स्पष्टता से उससे कह देता कि कमल तथा उसकी श्रेणी एक हो चुकी है तो वह इसको कदापि सहन नहीं करती। कारण मोहन ने न जाने कितनी बार प्रश्न किया था, "मालती, यदि मैं भूल से अपना दूसरा विवाह कर लूँ तो ?" तो उसका उत्तर मालती ने दृढ़ता-पूर्वक दिया था, "मैं उसे अपने संग कदापि नहीं रख सकती। मैं यह भी नहीं सहन कर सकती कि तुम अन्य स्त्री को नेत्र उठाकर भी देखो।" बस, इन्हीं कारणों से वह दोनों के प्रति अपना कर्तव्य पालन कर रहा था। वह नहीं चाहता था कि कोई भी अपना हृदय जलाये। तभी तो संघर्ष को स्वयं सहन कर रहा था। परन्तु उसके प्रति किसी को चिन्ता न थी।

[१६]

किरण के उस रात के व्यवहार से पुजारी जी चौकन्ने से हो गये थे, एवं उनके विचारों में भी देवदासी के प्रति अन्तर आगया था, अर्थात् वह घण्टों तक देवदासी को निर्निमेष नेत्रों से निहारते रहते थे। हृदय में उनके कुछ-कुछ होने सा लगा था। दबी हुई भावनायें मानों राह पाकर सजग हो उठी थीं। वह प्रायः उठकर उसके समीप जाते एवं कहना चाहते "बाले, मैं तुमसे प्रेम करने

लगा हूं। क्योंकि तुममें यौवन है, रूप है, सौंदर्य है, मादकता है।" परन्तु शब्द कण्ठ तक ही आकर रुक जाते। वह विवश हो फिर वहां से चले आते। कभी-कभी तो वह बातें भी आरम्भ करते, "बाले, तुम्हें मालूम है कि मैं कौन हूं?"

"मेरे सब कुछ," वह मुस्कराती हुई उत्तर देती।

"तुम्हारा सब कुछ?" प्रफुल्लित होकर वह प्रश्न सा करते।

"हां बाबा, इसमें आश्चर्य की क्या बात है। तुम्हीं ने तो पाल-पोसकर मुझे इतनी बड़ी किया है। मुझे गुण सिखाये हैं," अल्हड़पन से मुँह बनाकर वह कहती।

'बाबा' का सम्बोधन उनको खल-सा जाता। वह उठकर वहां से चल देते और अपने कार्यों में मन लगाने की चेष्टा करते, परन्तु सब निष्फल होते। उनका मन अधीर हो उठता। कहता 'चल, देवदासी से कह दे। अब से वह मुझे 'बाबा' कहकर सम्बोधित न किया करे।' एवं वह उस निर्णय को सत्य करने के विचार से उसके पास जाना चाहते, परन्तु पैर उनका साथ न देते। अन्त में वह विवश होकर राधाकृष्ण की मूर्ति की ओर याचना भरे नेत्रों से निहारने लगते। कभी-कभी तो व्याकुल होकर मूर्ति पर अपना सिर रखकर चिल्ला पड़ते, "मोहन, यह कैसी माया? मुझे मार्ग दिखाओ भगवन्!"

और देवदासी, वह तो मोहन के ही प्रेम में जल रही थी। जितनी देर तक वह मन्दिर में रहता उसका हृदय उल्लास से परिपूर्ण रहता। शरीर में स्फूर्ति रहती। कभी-कभी तो ऐसा होता कि वह अपना साहस एकत्रित कर मोहन से कहना चाहती, "देव, मैं आपकी दासी हूँ। अब मैं आपका विरह अधिक नहीं सहन कर सकती। मुझे एक पल भी अपने सामने से पृथक् न कीजिये। मैं

आप में अपने इष्ट-देव को साकार देखती हूं।" परन्तु स्वर कण्ठ से बाहर ही न निकलता। केवल अभिलषित नेत्रों से वह उसकी ओर देखती ही रह जाती तथा सारा दिन अपनी कोठरी में पड़ी रहती और सन्ध्या की बाट जोहा करती। सन्ध्या समय वह उल्लसित हृदय से श्रृंगार करती। प्रफुल्लित होकर मन ही मन में कहती, 'देव, मैं आपके वियोग में दिन भर पड़ी-पड़ी जलती रही। सांझ की प्रतीक्षा की। आप जिस समय दर्शन देते हैं, उस समय मेरे हृदय का कमल खिल जाता है। अंग-अंग में उत्साह हो आता है। मैं श्रृंगार करती हूँ। क्यों? आपके नेत्रों में बस जाऊं इसलिये। आपके एक-एक शब्द पर मेरे पैरों से नूपुर की झंकार हो और मैं मद-मत्त होकर नृत्य करूं इसलिये।"

उधर किरण भी प्रतिहिंसा की अग्नि में जल रहा था। वह उस अवसर की घात में था कि किसी प्रकार देवदासी के सौन्दर्य-रस का आस्वादन वह एक ही बार कर ले। चाहे जिस प्रकार हो। परन्तु अपनी इस चेष्टा में उसे असफलता ही मिलती थी। विजयसिंह बड़े न्यायी थे। वह अपनी प्रजा के लिए अपने प्राणों का सौदा करने के लिए प्रतिक्षण तत्पर रहते थे। यही कारण था कि उनकी प्रजा भी उन पर अपने प्राण न्योछावर करने के लिए उद्यत रहती थी। परस्पर निष्कपट प्रेम था। इसी कारण किरण जब कभी यह विचारता, 'अमुक व्यक्ति को तोड़कर अपना स्वार्थ सिद्ध किया जाय,' तो उसका साहस न होता। उसे स्पष्ट अनुभव हो जाता कि वह व्यक्ति उसकी सहायता नहीं कर सकता। बस! वह विवशतापूर्वक मन्दिर में जाकर देवदासी के आचरण को देखा करता। वह कुछ न कर सका, कुछ न कर सका।

× × × ×

और मालती भी नित्य प्रति मन्दिर में जाकर देवदासी की चेष्टाओं को ताड़ रही थी। जब पेट में बात पच न सकी तो मोहन से कह ही तो दिया भोजन करते समय, "सुनते हो, देवदासी के लक्षणों से मैंने भली प्रकार अनुभव कर लिया है कि वह तुमसे प्रेम करने लगी है। यह बात ठीक नहीं। कोई अनर्थ...।"

"तुम भी बस शंका करने लगती हो। मैं तो नहीं करता," उसने उत्तर में कहा।

"न सही। ये सब क्या अन्धे हैं, जो यह सब देखते हुए भी कुछ प्रबन्ध नहीं करते?"

"न करें। तुम्हें इससे क्या?" मुस्कराकर वह कहता।

"सुनो, मन्दिर जाना स्थगित न कर दो। नहीं तो फिर तनिक देर जो राम-नाम लेती हूँ वह भी बन्द हो जायगा।"

"बस! सोच समझ लो।"

बात यों ही टल जाती। एक दिन मोहन ने देवदासी से मिलने का निर्णय कर डाला।

× × × ×

मोहन उस दिन पांच बजे सायंकाल देवदासी से मिला। वह वाटिका में पूजा के लिए फूल तोड़-तोड़कर आंचल में भर रही थी। पुजारी जी भी छिपकर एक निकट के वृक्ष के तने से चिपके खड़े थे। मोहन देवदासी के पीछे वाली शिला पर बैठ गया। कुछ क्षण तक तो वह इसी आशा में उसी प्रकार बैठा रहा कि वह जब स्वयं ही पुष्प तोड़कर उसकी ओर घूमेगी तभी बातें की जायेंगी। परन्तु जब ऐसा न हुआ तो उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिये उसने मृदु स्वर में पुकारा, "सुन्दरी!"

देवदासी मानों चौंक सी पड़ी। घूमकर उसने देखा अपने

आराध्य देव को बैठे हुए। वह चकित होकर मन्त्र-मुग्ध सी खड़ी रह गई। मोहन ने फिर पुकारा, "सुन्दरी!"

अब उसे अपनी स्थिति का भान हुआ। उसके मुख से निकल गया "देव!"

मोहन उसके इस सम्बोधन से चौंका, परन्तु झट से सम्भल कर बोला, "सुन्दरी, बैठो। मैं आज एक बड़े आवश्यक कार्य से तुम्हारे पास आया हूँ।"

वह शिला पर एक ओर बैठ गई और धधकते हुए (आन्दोलित) हृदय से उच्चारण किया, "आज मेरी साधना पूरी हुई दीखती है। मेरे देव स्वयम् ही मेरे पास आगये। बाबा ने सत्य ही कहा था कि जिस पर जिसकी सच्ची श्रद्धा होती है वह उसे अवश्य प्राप्त होता है।"

"सुन्दरी! यह पागलों जैसी······।"

"हाँ, आप बिना आज्ञा के आये हैं क्या?" बात काटती हुई वह प्रश्न कर बैठी।

"नहीं तो।"

"तब तो ठीक है।"

"सुन्दरी, समय अधिक हुआ जा रहा है। इस कारण मैं अपना प्रश्न तुम्हारे सामने रखता हूं। तुम मुझसे प्रेम करती हो न?"

"निश्चय!"

"सच्चा अथवा अपने स्वार्थ-हेतु?"

"मैं तो अपने इष्टदेव को हर समय अपने साथ देखती हूं। बस, यही इच्छा है कि आप इसी प्रकार हर पल मेरे सामने बैठे रहें और मैं आपको ही देखती रहूं और उपासना करती रहूँ,"

कहते हुए देवदासी ने अपने आंचल के फूल कलाकार पर चढ़ा दिये।

उस दृश्य को देखकर पुजारी जी पागलों की तरह वृक्ष की ओट से निकलकर उन दोनों के सामने आ खड़े हुए। पुजारी जी आवेश में बोले, "यह नहीं हो सकता। मैं तुमसे प्रेम करता हूं। तुम्हें मुझसे प्रेम करना होगा। मैंने ही तुम्हें जीवन प्रदान किया है। तुम मोहन से प्रेम नहीं कर सकतीं।"

"प्रेम कोई खिलवाड़ नहीं है कि जिधर चाहा उधर घुमा लिया। पुजारी जी, आपने इनका पालन-पोषण अपनी सन्तान की भांति किया है। आप ही इनके माता तथा पिता दोनों हुए। तनिक बुद्धि से तो कार्य कीजिए। अपने लोक-परलोक को अन्धकार में न डालिये। यह दो दिन के रूप-लावण्य पर मुग्ध हो विषयों में न फंसिये।" सान्त्वनापूर्ण शब्दों में मोहन ने आदेश-सा किया।

"हां बाबा, आज तुम्हें क्या हो गया है?" घबराकर देवदासी बोली। तुम्हीं न जाने कितने-कितने आदेश किया करते थे मुझे। आज स्वयं ही अन्धकार में बढ़े जा रहे हो।"

"मोहन, आजकल मैं बड़ा भ्रमित हूं। मेरे मन में वासना जाग चुकी है। मैं बाले के रूप-यौवन पर मुग्ध होचुका हूं। जब से किरण ने उसे कहा, 'देवदासी तुम रूप की प्रतिमा हो,' मुझे रात-दिन व्याकुलता रहती है। मैं स्वयं सम्भलना चाहता हूँ, परन्तु विषय-वासना का जाल फाँसने का प्रयत्न करता है। जब तक तुम मन्दिर में रहते हो, मोहन, मैं तुम्हारे भजनों में सब कुछ भूल जाता हूं। परन्तु उसके पश्चात् तो पीड़ा सहन करनी मुश्किल हो जाती है। रात भर बस हृदय चीत्कार कर उठता है, 'देवदासी! देवदासी आओ! नींद नहीं आती; मेरे हृदय से लग जाओ।' आज

मैं पैंतालीस वर्ष का हो चुका हूँ। ऐसा कभी न हुआ था," वेदना मिश्रित स्वर में हांफते हुऐ वह इतना कह गये।

"पुजारी जी, आप स्वयं बुद्धिमान् हैं। फिर भी मैं आपको एक उपाय बताता हूं; भगवान् ने चाहा तो आपका कल्याण होगा। कदाचित आप विषय-रस चखने के लिये उन्मादित हो उठे हैं। यह भी प्राकृतिक है। आप में सारी जिज्ञासाएं न जाने कब से दबी पड़ी थीं, उन पर रखा हुआ पत्थर किरण की बातों ने खिसका दिया है। वह भड़भड़ा कर निकलना चाहती हैं, इसलिए आपको इतना कष्ट है। आप देवदासी को अपने सम्मुख बिठाकर स्वच्छ हृदय से गीता-भागवत् का श्रवण किया करें। यह अवश्य है कि सर्व प्रथम कामनायें अपना प्रभुत्व दिखायेंगी। उस समय आप अपने हृदय को समझाकर कहियेगा, "अरे, यह तू क्या करता है? यह तो अपनी पुत्री है। मैं इसे भगवान् के दासत्व में देने जा रहा हूं।' फिर देख लीजियेगा आप भगवान् के सामने होंगे। भगवान् मुस्कराते हुए आपके सामने होंगे। यही देवदासी भगवान् बन जायेगी," नम्रतापूर्वक मोहन ने इतना बड़ा व्याख्यान दे डाला।

"ऐसा ही करके देखूँगा," कहकर ठंडी साँस छोड़ दी पुजारी जी ने।

"हां बाबा, मैं भी यही करूंगी।"

इस समय 'बाबा' का सम्बोधन पुजारी जी को कुछ मृदु प्रतीत हुआ। वह वहां से उठकर मन्दिर में चले गये और जाकर राधा-कृष्ण की मूर्ति की ओर टकटकी लगा दी।

"हां सुन्दरी, मैं यह कह रहा था कि तुम मुझसे सच्चा प्रेम करती हो न," मोहन ने अब मुख्य विषय पर बातें प्रारम्भ कीं।

"हाँ," नम्रतापूर्वक वह बोली।

"तो सच्चा प्रेम त्याग चाहता है, सुन्दरी!"

"मैं उसके लिये अपने प्राण तक दे सकती हूं। आप आज्ञा देकर तो देखिये।"

"तो इतना करो कि अभी तुम अपने बाबा को सँभालो। कहीं प्रेम में उन्मत्त हो कोई ऐसा कार्य न कर बैठना जिससे तुम्हारा निरादर होने लगे। अगर ऐसी कोई सम्भावना हो तो मैं यह राज्य शीघ्र से शीघ्र छोड़ दूंगा।"

"नहीं देव, आप निश्चिन्त रहें। मैं यह बात किसी पर भी प्रकट न होने दूंगी। मैं तो इतने ही में सन्तुष्ट हूं कि आप एक घण्टे के लिये ही आजाते हैं।

"समझती हो, ये समाज के ठेकेदार तुम्हें एक तुच्छ नर्तकी समझते हैं। घृणा की दृष्टि से देखते हैं। तुम्हें पतिता समझते हैं। परन्तु यहां के व्यक्तियों की दृष्टि कलापूर्ण हो चुकी है। वे अब तुम्हें कलाकार की दृष्टि से देखकर कुछ श्रद्धा रखने लगे हैं।"

"यह आपकी ही कृपा है देव!" कृतज्ञतापूर्वक वह बोली।

"अच्छा, चलता हूँ। सँभलकर रहना। इस बार पूर्णमासी की रात को बड़े समारोह तथा उल्लास के साथ मन्दिर में उत्सव होगा," कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

"देव!" उच्चारण कर देवदासी ने उसके चरण स्पर्श किये। वह वहां से चल पड़ा।

× × × ×

पूर्णिमा की रात्रि थी। मन्दिर भांति-भांति की पुष्प-लताओं से सुसज्जित था। चारों ओर से जनसमुदाय आनन्द से उन्मत्त होकर मन्दिर में एकत्रित हो रहा था। चन्द्रदेव खिलखिलाकर हंस रहे थे।

शायद वह भी उस रात के उत्सव पर प्रसन्न थे। सभी एकत्रित हो चुके थे केवल मोहन के आने की देरी थी। देवदासी ने तो आज नवीन प्रकार का श्रृङ्गार किया था, जो उसकी सुन्दरता को फाड़-फोड़कर निकल रहा था। किरण का हृदय तो उसे देखकर मानों उन्मत्त सा हो रहा था। उसके नेत्र उसे देखते न थकते थे। वह उसे अपने में बसा लेना चाहता था। उसने न जाने क्या-क्या निर्णय कर डाला था, परन्तु अन्त में वह इस निश्चय पर पहुंचा, 'आज उत्सव के पश्चात् देवदासी के सौंदर्य का आस्वादन अवश्य करूंगा, चाहे चाचा जी मुझे फांसी पर ही क्यों न लटका दें।'

हां, पुजारी जी इन पन्द्रह दिनों में बिलकुल बदल गये थे। वह भगवान् के सच्चे भक्त हो गये थे। अब देवदासी में भी वह भगवान् के रूप को देखते थे। आज वह मुग्ध हुए बैठे थे अपने आसन पर, और सोच रहे थे कि वह ग्वाल-बाल गायन तथा झाँझ करताल आदि का प्रयोग करेंगे। उनके श्रीकृष्ण जी मधुर स्वर-लहरी तथा तालों पर नृत्य करेंगे और वह कृतार्थ हो जायेंगे उसकी आरती लेकर।

मोहन ने मुस्कराते हुए मन्दिर में पदार्पण किया। सबके हर्ष की सीमा न रही। मोहन सदा की भांति अपने नियुक्त स्थान पर जा बैठा। उस समय उसका हृदय भी कुछ उतावला-सा प्रतीत हो रहा था। एक बार उसके नेत्र चन्द्रदेव की ओर गये। हृदय में नवीन प्रकार की भावनाओं का संचार हुआ। उसने दायीं ओर दृष्टि घुमाकर देखा कि देवदासी अपूर्व श्रृङ्गार किये उसकी ओर देख रही थी। पुजारी जी ने मुस्कराते हुए अपनी अभिलाषा प्रकट की, "कलाकार, आज ऐसा भजन गाओ कि मैं अपने को भूलकर भगवान् को साकार यहीं देखूं।"

"अच्छी बात है," कहकर मोहन ने गायन आरम्भ किया:—

'प्रभु जी, मैं तो तुम बिन दुखियारा !
जीवन है तुम पर वारा !
प्रभु तुम जीते मैं हारा,
मैं तो तुम बिन दुखियारा !
जब से तुमसे नेह लगाया
जग छोड़ा और छोड़ी माया
जगत हुआ अंधियारा !
मैं तो तुम बिन दुखियारा !!
प्रभु जी, मैं तो तुम बिन दुखियारा !

देवदासी ने आज सब दिन से अधिक तन्मय होकर मोहन के प्रत्येक शब्द पर नृत्य किया। वह यही सोचकर आई थी। भजन समाप्त होते ही सबके मुख से नित्य की भांति प्रशंसा के शब्द 'वाह-वाह' निकले, परन्तु देवदासी ने मोहन से प्रार्थना की, "सुनाइये, एक भजन और सही। आज मेरे पैर नाचने के लिये उतावले हो रहे हैं।" मोहन उसकी प्रार्थना को न ठुकरा सका। उसने एक दृष्टि देवदासी के याचना भरे नेत्रों की ओर की, और दूसरी विजयसिंह के मुख पर। उन्होंने भी हर्षित हृदय से कहा, "हां कलाकार, आज मैं भी एक भजन और सुनना चाहता हूँ।"

फिर क्या था ? सबके हृदय हर्षोल्लास से परिपूर्ण हो उठे। मोहन ने अपने कोकिल-कण्ठ से मधुर स्वर-लहरी छेड़ी। झांझ, करताल, मृदङ्ग तथा अन्य सब बाजे एक साथ बज उठे। देवदासी मद-मत्त हो नृत्य करने लगी। उस समय वह इन्द्र की सभा की अप्सरा सी प्रतीत हो रही थी। किरण तो अपने को भूल-सा गया था। वह तो मुग्ध हो केवल उसी की रूप-राशि का चिंतन कर

रहा था। भजन हो रहा था:—

'जीवन है दिन चार रे!
राम जपो, अब राम जपो!!
भूठा यह संसार रे
अब राम कहो, अब राम कहो!'
बिना भजन के मानव-मन में
सूनापन छा जाये।
कार्य न पूरा हो पाये,
और मन में द्वन्द्व समा जाये।
राम जपन है सार रे,
अब राम जपो अब राम जपो!
राम भजन सब गाओ-गाओ,
वैर-भाव को तज कर के—
तुम नित्य नियम, से गाओ,
अब राम जपो अब राम जपो॥
क्यों भरमाये तू अपने को,
माया परे हटाओ।
राम नाम है सार रे,
अब राम कहो अब राम जपो।
राम नाम तू गा ले बन्दे!
भाग जायगा धोखा।
चाह हृदय में प्रभु की जिसके
उसको किसने रोका।
सच्ची प्रीत वही है पगले,
नय्या करे जो पार रे।

अब राम जपो तुम राम कहो।
कृपा प्रभू की मुझ पर होवे,
वह, वह न रहे, मैं, मैं न रहूं।
तन-प्राण प्रभू में मिल जाये।
चारों ओर गूंज उठे ध्वनि,
नाच उठे संसार रे!
अब राम कहो, अब राम जपो!!

जैसे ही भजन समाप्त हुआ वैसे ही देवदासी ने नृत्य करते-करते पागलों की भांति कटार निकाली और अपनी छाती में भोंक ली और विद्युत् की भांति झपटकर मोहन के चरणों में जा गिरी। रक्त की धारा बह निकली। उसने रुक-रुककर मोहन से कहा, "देव! मैं तुम्हारी दासी हूँ। अब मुझे तुमसे कोई पृथक् नहीं कर सकता। हर पल मैं तुम्हारे साथ रहूँगी। बाबा कहा करते थे, 'बाले, तू देवदासी है। अपने प्रभु के चरणों में लीन हो जा।' आज उनका कथन सत्य हुआ। देव, ठुकराना मत।" फिर उसके शब्द सदैव के लिये शून्य में लीन हो गये। उसके नेत्र खुले हुए थे, मानों मोहन के मुख की ओर देख रहे हों। मुख पर मुस्कराहट थी। सब स्तब्धतापूर्वक उस दृश्य को देख रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानों मन्दिर में कोई था ही नहीं। पुजारी जी के मुख पर विचित्र प्रकार के चिन्ह थे, जिनसे स्पष्ट था कि उन्हें उस पर गर्व था। वह आज विजयी प्रमाणित हुए थे। किरण भूखे सिंह की भांति मोहन की ओर निहार रहा था। जब उसके धैर्य का बांध टूट गया तो वह गरजकर फड़कते हुए अधरों से बोला, "चाचा जी, यह सब मोहन के कारण हुआ है। उसे दण्ड मिलना चाहिए।"

"किरण, अभी तुम निरे बालक हो। सच्चे प्रेम का यही अन्त होता है। देवदासी ने अपने को अपने देवता के चरणों पर चढ़ा दिया। उसने उसमें अपने मोहन को ही देखा। कलाकार तो महान् आत्मा सिद्ध हुआ। उसका (मोहन) इसमें क्या दोष ?" मुस्कराकर विजयसिंह बोले।

"देवदासी, तुम धन्य हो," कमला ने दीर्घ निश्वास छोड़ी।

किरण के पास बोलने के लिये कोई शब्द न थे। फिर भी वह अपने कुटिल स्वभावानुसार जलते हुए नेत्रों से मोहन की ओर देख रहा था।

देवदासी के दाह-संस्कार का प्रबन्ध किया जा रहा था। चन्द्र-देव पूर्व की भांति खिलखिलाकर हंस रहे थे। उन्हें भी शायद उसके समर्पण पर गर्व था।

[१७]

उस दिन भी कमला सदैव की भांति मोहन के यहां गई और निरंजन को अपनी गोद में लेकर उसका चुम्बन ले लिया। मालती ने बड़े प्रेम से कमला को अपने समीप बिठाया। बातें आरम्भ होगईं। मालती ने कहा, "अच्छा कुमारी जी, यह सब हुआ सो हुआ। अब एक बात पूछूं, बताओगी ?"

"एक नहीं, बहुत पूछो। मैं सबका उत्तर दूंगी," मुस्कराकर उसने उत्तर दिया।

"तुम्हारी दृष्टि में वह कैसे हैं ?" लज्जा भरे नेत्रों से मुस्कराते हुए उसने पूछा।

"कलाकार जी ?" हंसकर कमला ने प्रश्न किया।

"हाँ, वे ही।"

"देवता," कहकर लज्जा से उसने नेत्र झुका लिये और

उसका मुख लाल होगया।

"तो तुम उनसे प्रेम करती हो न ?" अब मालती गम्भीर हो चुकी थी।

"कैसे बताऊं ?" पूर्व की भांति पृथ्वी की ओर देखती हुई वह बोली।

"अच्छा, उनके विषय में तुम्हारे क्या विचार हैं ?"

"कह नहीं सकती, परन्तु इतना अवश्य कहूँगी कि वह मेरी कोई बात नहीं टालते। जो मैं कहती हूँ वह अवश्य करते हैं और आचरण भी उनका बड़ा प्रशंसनीय है!"

उसके वाक्य के इस अन्तिम अंश 'जो मैं कहती हूं वह अवश्य करते हैं' ने मालती के हृदय में जलती हुई विद्वेष की अग्नि में घी की आहुति का काम किया, परन्तु उसने अपने वे भाव कमला पर प्रकट न होने दिये वरन् यह कहकर उठ खड़ी हुई, "अरे, इतना समय हो गया ? कुछ जलपान के लिये तो तैयार कर लूँ।" कमला ने भी कोई आपत्ति न की। वह निरञ्जन के साथ खेलने में व्यस्त हो गई। हां, मालती ने निर्णय कर डाला, "आने दो आज उनको। सब बातों का निर्णय कराके ही रहूँगी।"

× × × ×

उसी रात्रि में—

रात्रि में जब मोहन नित्य की भांति भोजन करके अपने शयनागार में पहुंचा तो मालती ने चण्डिका की आकृति से वहां प्रवेश किया और भृकुटि चढ़ाकर बाघिन की भांति गरजकर कहा, "तुम सदा मुझसे सभी बातें छिपाते चले आते हो।"

"स्पष्टतापूर्वक कहो भी तो कुछ। मैंने अपनी जान में अभी तक तो कोई बात छिपाई है नहीं," अवाक् होकर वह बोला

एवं आश्चर्य से अपने नेत्र उसके मुख पर स्थिर कर दिये।

"बड़े सत्यवादी हो तुम। आज मैंने राजकुमारी जी से ही तुम्हारी सारी करतूतें मालूम कर लीं। एक के प्राण लेकर भी जी नहीं भरा," क्रोध भरे स्वर में उसने कहा। उस समय क्रोध के कारण उसका शरीर कांप रहा था।

"अर्थात्?" बनावटी मुस्कराहट चेहरे पर लाकर उसने कहा।

"वह कहती थी कि तुम उसकी सभी इच्छायें पूर्ण करते हो, जो वह चाहती है। तभी तो इतना उसके पास घुसे रहते हो," क्रोध से जलते हुए नेत्रों से देखती हुई वह बोली।

"तो क्या तुम इससे विमुख रहती हो? क्या तुम्हारी इच्छा मैं पूर्ण नहीं करता, बोलो मालती?" हंसकर उसने प्रश्न किया।

"इस बात से मुझे कोई सम्बन्ध नहीं। आज मुझे यह बताओ कि तुम राजकुमारी जी से प्रेम करते हो अथवा नहीं। झूठ न कहना। यदि कोई बात छिपाई तो निरञ्जन की सौगन्ध है तुम्हें, हां," सिंहनी की भांति गरजकर वह बोली। उसके नेत्र क्रोध से लाल हो रहे थे।

अब तो मोहन चकराया, परन्तु उसी क्षण संभलकर बोला, "हां, मैं उससे प्रेम करता हूँ।"

"किस प्रकार का? मेरे समान?" कुछ नम्रतापूर्वक वह प्रश्न कर बैठी।

"बता नहीं सकता मालती," मुस्कराकर उसने उत्तर दिया।

"बताना ही पड़ेगा," मेज़ पर एक हाथ पटककर गर्व से आज्ञा-सूचक लहजे में वह बोली।

"बता तो दिया कि मैं राजकुमारी से प्रेम करता हूँ," उसी प्रकार मुस्कराकर वह बोला।

"मुझ जैसा ?" नेत्र नचाकर वह फिर प्रश्न कर बैठी।

"कह तो दिया यह नहीं बता सकता," कहकर वह हंस पड़ा।

"तो तुम्हें इस स्थान को छोड़ना पड़ेगा। अभी देवदासी के 'केस' में बच गये हो। मुझे अपना पहले का जीवन ही सुखमय प्रतीत होता है। घड़ी दो घड़ी बैठा तो करते थे घर में। मेरे हृदय में किसी के प्रति द्वेष तो न था। मैं यह अनुभव तो न करती थी कि तुम दूसरे के हुए जा रहे हो। फिर सबसे मुख्य बात तो यह है कि उस समय मुझमें मनुष्यत्व तो था। अब तो सब ऐश्वर्य होते हुए भी सब मनुष्यत्व खो बैठी हूं और शायद तुम्हें भी खो देने की शंका होने लगी है। हृदय प्रतिपल सन्देह-युक्त रहता है। द्वेष अथवा ईर्ष्या का वास उसमें हो गया है। जिसका प्रभाव यह हुआ है कि घर में कलह उत्पन्न होगया है। शान्ति तो जैसे रूठ ही गई," एक सांस में वह इतना कह गई।

"परन्तु मालती, मैं सहसा ऐसा नहीं कर सकता।"

"कारण ?" भृकुटि चढ़ाकर वह प्रश्न कर बैठी।

"इसमें अनर्थ हो जाने की सम्भावना है।"

"अनर्थ की सम्भावना है, क्या कहते हो जी ?" विस्मय-पूर्वक वह बोली।

"यही कि विजयसिंह तथा दूसरे व्यक्ति कुछ का कुछ समझ बैठेंगे। कहीं मेरे प्रति लाञ्छन न लगा दें। फिर राज्य की बात है न," गम्भीरतापूर्वक वह बोला।

"हां जी," विचित्र प्रकार का मुंह बनाकर वह बोली।

"अब फिर तुम्हीं बताओ और रास्ता भी क्या है ?"

"यहां से जैसे भी हो प्रस्थान करो शीघ्र से शीघ्र। समझे," अधीरतापूर्वक उसने याचना सी की।

"प्रयत्न करूंगा," कहकर उसने ठण्डी सांस छोड़ दी।

"अच्छी बात है।"

इसके उपरान्त दोनों सोगये।

अब मोहन उलझन में व्यस्त रहता। उसका स्वास्थ्य भी गिरता जा रहा था। जब तक वह कमला के सामने रहता तब तक मुख पर प्रसन्नता की आभा रहती; परन्तु जैसे ही वह वहां से उठकर घर आता मुख की कांति दूर हो जाती। शोक तथा चिन्ता के चिन्ह झलकने लगते। मालती उसकी उस दशा को देखकर विवशतापूर्ण स्वर में कहती, "यदि तुम्हें कष्ट होता है तो रख न लो राजकुमारी को घर में। मेरी क्या चिन्ता करते हो घुट-घुट कर ही रह लूंगी।" वह कुछ न बोलता। उसकी हार्दिक अभिलाषा यही थी कि उसके कारण किसी को कष्ट न हो।

उधर जब वह कमला के पास जाता तो वह हंसकर कहती, "मैंने तो सुना था कि आपका जी अच्छा नहीं रहता, परन्तु मैं तो उसके विपरीत ही देखती हूँ।" वह उसका कुछ उत्तर न देता। हृदय में ही उसकी व्यथा दबी रह जाती।

प्रायः वह अकेले में बैठकर सोचता, "क्या इसी प्रकार कमला को भी कष्ट होता होगा? क्या वह भी मेरे अभाव का आभास करती होगी जैसा कि मुझे होता है? इसी प्रकार उसके भी हृदय में मेरी ही भांति टीसें उठती होंगी? नहीं नहीं, वह क्यों मेरे लिए चिन्ता करने लगी। मैं हूँ तो उसका सब कुछ, परन्तु जब वह समझे तब न!" वह सारी रात व्याकुलतापूर्वक जागकर व्यतीत कर देता।

जब उसका हृदय अधिक व्याकुल हो उठता तो वह निर्णय कर बैठता, "मोहन कहीं भाग जा! किसी ऐसे स्थान पर जाकर

निवास कर, जहां कोई भी मनुष्य न हो। पर्वत की कन्दरायें हों। उन ही में बैठकर अपने हृदय की व्यथा का गान अलाप। पशु-पक्षी तथा वायु-वृक्ष उन्हें सुना करें। वे सब उन्हें एकत्रित करते जायें। जब वह इस संसार से चल दे तो यदि उनमें से कोई भी उस ओर से निकले तो कमला को सुना दें। नहीं नहीं! कमला को नहीं वरन् मालती को।" फिर उसी क्षण ममता-मोह उस पर आक्रमण करते। वह अपने उस निर्णय से डगमगा जाता। मन ही मन कह उठता, "नहीं मोहन, निरञ्जन तथा मालती ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? उनका संसार तेरे ऊपर ही तो आश्रित है। अपने कर्त्तव्य-पथ से न डिग, कायरों की भाँति भागना न सीख!" बड़ी पीड़ा थी उसे। वह उसी में व्याकुलतापूर्वक समय व्यतीत करने की चेष्टा करता।

कभी कभी वह अपनी व्यथा अपनी सरस्वती पर प्रकट कर देता, "कमल, किसी ऐसे निर्जन स्थान पर चला जाना चाहता हूँ, जहां से कोई भी प्राणी न निकल सकता हो।"

"कारण, देव?" भर्राये हुए कण्ठ से वह प्रश्न करती।

"क्या बताऊं कमल, मेरी हार्दिक अभिलाषा तो यह है कि तुम मेरे संग रहो, इसी प्रकार मेरी रसना बनी रहो और मैं अपनी कला को उन्नति के शिखर पर चढ़ाने में प्रयत्नशील रहूँ," वेदना-मिश्रित स्वर में वह उत्तर देता तथा अभिलषित नेत्रों से उसके मुख की ओर निहारने लगता।

"मैं कब तुमको इससे विमुख करती हूँ, देव?" श्रद्धापूर्ण शब्दों में वह कहती।

"कमल, मुझे रात्रि भर तनिक भी नींद नहीं आती। बोलो, यह सब क्या है?" व्याकुलतापूर्वक वह अपना हृदय उसके

सामने खोलकर रख देता।

"क्यों अपनी ऐसी दशा किये डालते हो? कुछ विचारो तो, इससे क्या लाभ होगा?" अश्रु भरकर वह रुंधे कण्ठ से प्रश्न करती।

"मैं क्या करूं कमल। धैर्य बंधाने का न जाने कितना प्रयत्न करता हूं, परन्तु कोई सहायता नहीं करता," विवशतापूर्ण स्वर में वह कहता। बड़ी करुणा निहित होती उसके उस कथन में।

"विश्वास करो देव, मैं सब प्रकार से तुम्हारी सहायता के लिए उपस्थित हूं। परन्तु विवशता पग नहीं बढ़ाने देती," कहते हुए उसके गालों पर आंसू के बिन्दु ढुलक पड़ते। वह उन्हें आंचल से पोंछ डालती।

"ओफ," कहकर वह एक दीर्घ निश्वास छोड़ देता। बड़ा क्लेश होता था उसे।

"देव, यदि तुम्हीं इस प्रकार पीछे हटोगे, साहस छोड़ बैठोगे तो मेरा क्या होगा? मैं आत्म-हत्या कर लूंगी," भर्राये हुए कण्ठ से वह कहती।

"नहीं, नहीं कमल। कहीं ऐसा न कर बैठना, अब तुम मेरी सरस्वती बन चुकी हो। तुम्हें खोकर मैं कहीं का न रहूंगा, आत्म-हत्या करना कायरता है। तुम्हारी आत्मा भटकती रहेगी, कमल! साथ साथ मेरी भी। फिर तुम्हारे ऐसा करने से किसी का सुहाग लुट जायेगा। कोई पितृ-विहीन हो जायेगा। कहीं ऐसी मूर्खता न कर बैठना मेरी सरस्वती! समझीं? हां!" घबराकर व्याकुलतापूर्वक वह याचना करता।

"तो देव, कहीं से विष लाकर ही मुझे पिला दो, बस!" विवशतापूर्वक वह झुंझलाकर कहती।

वह उसे प्रेमपूर्ण नेत्रों से निहारने लगता।

"तो देव फिर?" भरीये हुए कण्ठ से वह प्रश्न करती।

"प्रेम में विश्वास रखो, कमल! यदि वह सच्चा है तो हम दोनों कभी भी एक दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते," सान्त्वनापूर्ण शब्दों में वह उत्तर देता।

परन्तु कलाकार को सान्त्वना देने वाला कोई न था। उसे मालती की क्रोध भरी बातें सहन करनी पड़तीं। वह खिन्न-सा रहता। करता क्या? मालती को तो बस कमला का ही भ्रम बना रहता। सोते-जागते उठते-बैठते। वह कुढ़ा करती हृदय में। उसकी कोई औषधि ही न थी। यद्यपि उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा वह अवश्य करता, परन्तु सब व्यर्थ।

× × × ×

मोहन नित्य की भांति दनदनाता हुआ कमला के कमरे में पहुंचा। जाते ही उसने देखा कि वह शोकातुर स्तब्ध बैठी थी। उसने मुस्कराते हुए मृदु स्वर में उच्चारण किया, "कमला!"

"आं!" चौंककर उसने अपनी अस्त-व्यस्त दशा को संभाला।

"क्या बात है? आज इतनी चिन्तित क्यों हो?" कहता हुआ वह सामने की कुर्सी पर बैठ गया।

"क्या बताऊं?" कहकर उसने एक दीर्घ निश्वास ली।

"तुम्हें बताने में कष्ट होता है तो न सही।"

"अच्छा आप वचन दो कि रुष्ट न होगे," हंसने का प्रयत्न करती हुई वह बोली।

ऊंहुंह!" सिर हिलाकर उसने अपनी स्वीकृति दे दी।

"सुनो! अब तुम यहां कम आया करो," अटक-अटककर वह बोली।

"कम आया करूं ? क्या किसी को कुछ भ्रम हो गया ?" चौंककर उसने प्रश्न किया। उसके हृदय में विचित्र प्रकार का कम्पन होने लगा।

"हां" ! क्षीण स्वर में उसने कहा।

"किसे हो गया ?" विस्मयपूर्वक उसने फिर प्रश्न किया।

"पिता जी को।"

"और रानी को ?"

"उनको तो पूर्व ही से था।"

"सो कैसे ?" धड़कते हुए हृदय से कलाकार ने कहा।

"आज प्रातः जब मैं कोई आठ बजे स्नान करने जा रही थी तो भय्या पिता जी से कह रहे थे 'चाचा जी, अब कमला का मोहन के साथ एकान्त में इस प्रकार बैठना उचित नहीं। वह अब इक्कीस वर्ष की नवयुवती है। फिर देवदासी की दशा तो देख ही ली है आपने। कुछ का कुछ हो जाने की सम्भावना है। उसके पास किसी को अवश्य बैठना चाहिये। नहीं तो मोहन का आना-जाना कम कराया जाय।'

"फिर तुम्हारे पिता जी ने क्या कहा ?" शंकित हृदय से उसने पूछा।

"उन्होंने केवल इतना कहा, 'किरण, तुम्हारा सन्देह करना उचित है, परन्तु कलाकार ऐसा नहीं। मैंने तथा रानी ने न जाने कितनी बार देखा है। वह अपनी लगन में स्थिर बैठा रहता है और कमला चित्र बनाया करती है। जब उसका गाना समाप्त हो जाता है तो कमला के तय्यार किये हुए चित्र का निरीक्षण कर वह अपने घर की राह लेता है,' इस पर भय्या ने न जाने कितनी कितनी बातें कीं कि पिता जी का मस्तिष्क भ्रमित होगया एवं

उसी के वशीभूत होकर उन्होंने मां को हमारे पास बैठने की आज्ञा दी है।"

मोहन कुछ न कह सका। स्थिर नेत्रों से इकटक न जाने वह किसको देख रहा था। उसके हृदय में न जाने कितने प्रकार के विचारों का तूफान उठ रहा था।

"तो तुमने क्या सोचा?" अटक-अटक कर क्षीण स्वर में उसने प्रश्न किया।

"यही कि धीरे-धीरे यहां आना स्थगित कर दूंगा। फिर शायद इस संसार से ही उठ जाऊं। यह बड़ा नीच है। रहने योग्य नहीं है," वेदना-मिश्रित स्वर में उसने उत्तर दिया।

"कहीं ऐसा न कर बैठना," भर्राये हुए कण्ठ से वह याचना कर बैठी।

"मैं विवश हूँ कमल! उनका सन्देह करना उचित है। मुझे तुमसे सब कुछ तो प्राप्त हो चुका। अब कुछ शेष नहीं रह गया।"

"तुम्हारा कथन सत्य है, देव।"

"फिर तुमने अब क्या निर्णय किया?"

"मैं तो तुम्हारा ही साथ दूंगी," विवशतापूर्ण स्वर में उसने उत्तर दिया।

"कमल, तुम्हारे माता-पिता की आशाओं पर पानी फिर जायेगा। उनके हृदय में जो अभिलाषायें हैं वे टूक-टूक हो जायेंगी।"

"फिर क्या किया जाये? मेरा जीवन कोई वे थोड़े ही व्यतीत करने आयेंगे, व्यतीत तो करूंगी मैं ही। फिर मुख्य बात तो यह है कि कोई मैं अबोध तो हूं नहीं कि वेश्यावृत्ति करूं," उत्तेजित

होकर वह बोली।

"वेश्यावृत्ति ? यह तुम क्या कहती हो, कमल ?" आश्चर्य-पूर्वक उसने प्रश्न किया।

"यही कि मेरा तुमसे पाणिग्रहण हो चुका है। फिर बार-बार कहीं किसी स्त्री का विवाह होता है। मुझे भारतवर्ष की ललनाओं के नाम पर कलंक का टीका नहीं लगाना है।"

"अच्छा अच्छा ! अब अपना कार्य आरम्भ करो। यदि कहीं कोई आगया तो...।"

"इससे पूर्व तुम यह बतलाओ कि कुछ कर तो नहीं बैठोगे ?"

"कह नहीं सकता। परन्तु यह निश्चय जानो कि मैं अब अधिक आघात नहीं सहन कर सकता। हृदय टूक-टूक हो चुका है। मुझे अब जीवित रहने की अभिलाषा नहीं है। फिर यदि मैं इस अन्यायी तथा निर्दयी संसार को त्याग दूं, तो मेरी सरस्वती तो रहेगी ही। उसका रहना आवश्यक है," वेदनापूर्ण स्वर में वह पागलों की भांति इतना कहकर चुप हो गया।

"देव !" कांपते हुए स्वर में वह आगे कुछ न कह सकी। उसका हृदय रो रहा था।

"कमल, इसमें शोक करने की कौन सी बात है ? कहीं निर्धन तथा धनी का सम्बन्ध हुआ है ? बोलो !" भर्राये हुए कण्ठ से उसने कहा।

"अब अधिक कुछ न कहो देव !" व्याकुलतापूर्वक उसने प्रार्थना की।

"अच्छी बात है," विवशतापूर्वक उसने कहा और वह निराशा का करुण-गान गाने में व्यस्त हो गया। वह भी तूलिका उठाकर उसके भाव चित्रित करने में व्यस्त हो गई।

प्रभु यह कैसा मोह दिया ?
सुख क्यों मेरा वह हर लिया।
मन अपना अब रहा न बस में
आग लगा दी है नस-नस में
भ्रम का बीज हृदय में बोकर,
सुख क्यों मेरा वह हर लिया।
माना, जग दुख का मेला है
सुक्खों की यह अवहेला है
माया ने सब को मोह लिया,
सुख क्यों मेरा वह हर लिया।
बोलो प्रभू ! क्या भूल हुई
मेरे मानस में हूल हुई
अपने जाने में मैंने तो—
अब तक कोई न भूल किया,
सुख क्यों मेरा वह हर लिया।
क्यों अपने होते वेगाने
सब जाते भ्रम को अपनाने
यह कैसा है अन्धेर किया ?
यह कैसा मोह दिया ?

मोहन उस आघात को सहन न कर सका। उसकी ठेस उसके हृदय पर ऐसी लगी कि वह तिलमिला उठा। उसका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरना आरम्भ हो गया। मुख की कान्ति उड़ गई। प्रसन्नता तथा उल्लास के स्थान पर शोक ने अपना आसन जमा लिया। उसने कमला के पास भी जाना कम कर दिया, परन्तु ऐसा करने से उसकी पीड़ा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली गई।

नेत्रों से नींद भाग गई। उसकी उस दशा पर किसी को भी दया न आती। राजसभा में जाता तो हृदय-विदारक कवितायें कहता, जिससे सबके हृदयों में द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता। परन्तु वह अपनी उधेड़-बुन में व्यस्त रहता। विजयसिंह तथा किरण उसकी उस व्यथा पर तनिक दया तक न प्रकट करते। हां! कमल के नेत्रों में आंसू आजाते। वह उन्हें सबकी दृष्टि से बचाकर पोंछ डालती। कलाकार चुपचाप अपनी कविता गाकर सभा से उठता तथा चला जाता कमला के कमरे में। वहां अब दोनों की देख-रेख के लिये किरण की स्त्री प्रकाशो अपनी ढाई वर्षीया पुत्री को लेकर विराजमान रहती। दोनों अपने हृदयों की व्यथा न निकाल पाते। हां, यदि तनिक भी अवकाश प्राप्त होता तो बस एक अथवा दो वाक्य अपनी-अपनी व्यथा के मुख से निकालते—वह भी भय खाते हुए 'कहीं प्रकाशो तो नहीं आ रही है।'

मोहन जब अपने घर पहुँचता तो मालती उसकी अवस्था देखकर कहती, "स्वामी, आपकी यह दशा अब मुझसे नहीं देखी जाती। यदि आपको दुःख है तो राजकुमारी जी को लेकर क्यों नहीं रहते? जिससे आपको सुख प्राप्त हो, वही करो।"

"मालती, तुम मेरा संसार हो। मैं तुम्हें जरा सा भी दुःख नहीं देना चाहता। यह मुझे भली प्रकार ज्ञात है कि तुम्हारा हृदय सदैव कमला के विचारों में ही व्यस्त रहता है। तुम भी सुखी नहीं हो। यदि मैंने उसे लाकर रख लिया तो तुम शायद पागल हो जाओगी। यदि गृह-लक्ष्मी ही सुखी न रही तो गृह-स्वामी को सुख कहां?" बड़ी वेदना होती उसके इन शब्दों में।

"न जाने क्यों इस अभागिन को मेरे जीवन में आना था? भगवान्, जैसे यह मुझे कलपा रही है वैसे ही यह भी आजीवन

कलपे। नहीं तो शीघ्र से शीघ्र इसका कहीं विवाह हो जाये। बस, पाप कटे। उसी दिन मैं सत्यनारायण की कथा सुनूंगी," कहकर क्रोध के आवेग में वह पागलों की भांति विकल हो जाती।

मोहन फिर कुछ न कहता। वह धैर्यपूर्वक अपने हृदय के भावों को दबाये वहां से प्रस्थान करता और अपने कमरे में जाकर पड़ रहता। उसको ऐसा प्रतीत होता मानों संसार नीरस हो। वह व्याकुलता से अपने नेत्र बन्द कर लेता एवं घण्टों उस दशा में पड़ा रहता। मालती निरञ्जन को लेकर वहां पहुँचती तो क्षीण स्वर में यही कहकर कि 'चलो निरञ्जन! तुम्हारे बाबू जी अभी सो रहे हैं' वहां से चली आती। हां, जब रात में मालती उसके पास जाती तो उसे इस भांति नेत्र बन्द किये पड़ा देखती। उस समय उसकी वह चुप्पी उसे असहनीय हो जाती। विवश होकर उसके कन्धे झकझोरकर कुछ नम्रता से प्रश्न कर बैठती, "क्यों स्वामी, क्या सो गये?" वह केवल मुख के भीतर से बिना अधर खोले ही उत्तर दे देता, "ऊंहुंह।" उसके उपरान्त वह बात करना चाहती परन्तु वह गिरे हुए शब्दों में यह कहकर टाल देता, "नींद आ रही है, मालती।"

कभी-कभी तो मालती खीझकर कहती, "चाहे कुछ भी हो स्वामी, आज आपको थोड़ा जागना ही पड़ेगा। दिन भर किसी प्रकार व्यतीत कर लेती हूँ इसी आशा में कि रात में अपने स्वामी से कुछ बातें होंगी। परन्तु आप तो जैसे परिवर्तित से होते चले जाते हैं। मैं आपको मानों काटती-सी हूँ। नेत्र बन्द किये रहते हो जिससे मेरा मुख न दिखाई दे। क्यों न हो, जब राजकुमारी जी इन नेत्रों में बसी हुई हैं तो मैं क्यों अच्छी लगूं!" वह अभागा, 'हां' 'हूँ' कहता हुआ स्तब्ध पड़ा रहता।

प्रायः ऐसा भी होता कि मालती क्रोध में पागल होकर कहती, "राम करे, आप वहां से दुत्कार कर निकाले जायें।" वह क्रोध से खून का घूंट पीकर रह जाता।

समस्त संसार निद्रा देवी की गोद में विश्राम कर रहा था। कुत्तों, शृगालों और पहरेदारों की 'जागते रहो' की आवाज रात की निस्तब्धता को भंग कर रही थी। शरत् की विमल चांदनी में कलाकार अपने जीवन से निराश हो किसी गम्भीर मुद्रा में तल्लीन था और समीप ही सोई हुई मालती की रूप-छटा को देख रहा था एकटक स्थिर नेत्रों से। उसका मुख चन्द्रमा के प्रकाश में अपूर्व सुन्दर प्रतीत हो रहा था। उसके ललाट की बिन्दी तथा लाल-लाल मांग उसकी सुन्दरता को और भी बढ़ा रही थी। न जाने कितनी देर तक देखने के पश्चात् उसने एक ठण्डी सांस ली और सहसा उसके मुख से निकल पड़ा, "शायद मालती, तुम्हारे सुहाग का अब अन्त निकट है। तुम्हारे मस्तक से यह सिन्दूर का टीका मिट जायेगा। उससे भरी हुई लाल उज्ज्वल मांग श्वेत हो जायेगी।" फिर उसी क्षण पागलों की तरह चिल्ला पड़ा, "बोलो मालती, मुख से जो अभी निकला क्या वह सत्य हो जायगा?" उसके उस प्रकार के उच्च स्वर में चिल्लाना सुनकर मालती की निद्रा भंग होगई। उसने अपने नेत्र खोलते हुए उसकी ओर देखा और आश्चर्य से प्रश्न किया, "स्वामी, अभी तक तुम सोये नहीं?"

"हां, नींद नहीं आ रही," सूखी हंसी हंसकर उसने कहा।

"होगा होगा, आओ विश्राम करो," कहते हुए मालती ने उसे खींचकर अपने एक ओर लिटा लिया।

"क्यों मालती, यदि मैं चल बसूं तो तुम क्या करोगी?"

"जो एक हिन्दू स्त्री करती है।"

"अर्थात् ?"

"आपके साथ सती हो जाऊंगी।"

"निरञ्जन का मोह नहीं है तुम्हें ?"

"नहीं, फिर ऐसे कुविचार उत्पन्न कैसे हुए ?" जम्हाई लेती हुई वह प्रश्न कर बैठी।

"ऐसे ही," प्रेम-मिश्रित स्वर में वह बोला तथा उसे खींच कर अपने हृदय से लगा लिया। प्रेम ने अपना स्रोत खोल दिया और वे दोनों उसी में डूबते-उतराते न जाने कब सो गये।

× × × ×

प्रायः मोहन अवकाश प्राप्त कर वेदना-मिश्रित स्वर में प्रश्न करता, "कमल, मैं तुम्हारा कौन हूँ ? क्या तुम्हारे भी हृदय में मेरी ही भांति टीसें उठती हैं, आंखों से नींद उड़ जाती है ?"

"मैं तुम्हारी हूं कौन ? अपने हृदय से ही इस प्रश्न का उत्तर पूछो। नींद तो मुझको भली प्रकार आती है। जैसे ही खाट पर पड़ी बस संसार की सारी चिन्तायें अदृश्य हुईं। नेत्र झपक गये। रहा यह कि मैं तुम्हें क्या मानती हूँ ? यह अपने हृदय से पूछो," कहकर वह मुंह बना लेती।

इतने ही में प्रकाशो आ धमकती। मोहन मन मसोसकर रह जाता। हृदय की बातें हृदय में ही रह जातीं। क्या करता अभागा ? विवशतापूर्वक वह यह सब सहन करता। उस पर दया करने वाला कोई भी न था। अन्त में विवश होकर वह गाना आरम्भ कर देता—

हे मोहन ! तेरी माया ने
क्यों इतना नाच नचाया है ?
इन सबके मन में तूने क्यों,
यह नाहक भ्रम उकसाया है।

जी चाह रहा तुझसे मिल लूं
अपने मन ही मन में खिल लूं
दुख ने अब तो आन हृदय में—
अपना रंग जमाया है।
क्यों इतना नाच नचाया है?

क्यों संसार बनाया झूठा
मढ़ता जो है दोष अनूठा
बस, इसी अग्नि ने मन में तो
उसके संघर्ष मचाया है।
क्यों इतना नाच नचाया है?

आओ, हे मोहन आओ
अब मत तुम कुछ देर लगाओ
आज व्यथा ने मन में क्यों
अपना अधिकार जमाया है।
क्यों इतना नाच नचाया है?

चैन न मिलती आह मुझे अब
भूल गया जग का धन्धा सब
अरे चलो, सीतेश प्रभो अब
तंग जगत् से आया है।
हे मोहन! तेरी माया ने
क्यों इतना नाच नचाया है?

उसके पश्चात् चित्र का निरीक्षण कर जो कमियां बतानी होतीं, बताता और फिर शोकातुर मन से घर चला जाता। अब तो ऐसा होगया था कि सन्देह अपनी चरम सीमा तक पहुंच चुका था। कमला यदि उसके घर जाती तो अब उसके साथ या तो रानी

आती अथवा प्रकाशो, जो उसके संग-संग छाया-सी फिरती। एक पल के लिये उसे अकेली न छोड़ती। वह उसके उस व्यवहार को घृणापूर्वक देखता रहता और विचारता, कितने नीच हैं ये सब ! मेरे ऊपर से विश्वास उठ गया है। इन्हें कोई व्यभिचारी मिलता तो पता चल जाता। तब शायद ये कमला के पीछे-पीछे न घूमतीं, न इतनी देख-रेख रखतीं। ये कितनी मूर्खा हैं। अरे, इनसे पूछा जाये कि कर्म करने वाले को किसी ने रोका है ? वह तो चाहे सात परदे में रखा जाये, तब भी वह अपनी मनमानी अवश्य कर लेगा। छिः छिः।

[१८]

अभी मोहन प्रातः की क्रियाओं से निवृत्त होकर जलपान के लिये उद्यत हो रहा था कि राजभवन के एक कर्मचारी ने उसे सूचित किया, "कलाकार जी, आज रानी बिटिया इस समय पढ़ेंगी। मेरे साथ चलिये।"

"चलता हूँ," कहकर उसने आवश्यक वस्त्र पहने। मालती ने कहा, "पांच मिनट रुक जाओ, हलुआ तैयार हुआ जाता है।"

"नहीं मालती, अब आज जलपान न करूंगा। भोजन ही सही," कहकर वह घर से बाहर होगया।

मार्ग में उसे शंका सी उत्पन्न हुई। उसने सोचा, "मुझे इतने दिन इस राज्य में हो गये, परन्तु कभी भी मुझे इतनी शीघ्रता से नहीं बुलाया गया। चलो, जो कुछ होगा देखा जायगा।"

जब उसने राज-भवन में पदार्पण किया तो वहां का वातावरण बड़ा गम्भीर देखा। विजयसिंह, रानी तथा किरण एक कमरे में गम्भीर मुद्रा में बैठे थे। उसने उन तीनों को नमस्ते की, परन्तु उन्होंने उसका कोई उत्तर न दिया। वह बिना रुके कमल के

कमरे में पहुंचा। वह भी भर्राई सी बैठी थी। निकट की कुर्सी पर बैठता हुआ प्रश्न कर बैठा, "क्यों कमल, आज कहां जाओगी ? आज तो कुछ.........?" एवं अपने बड़े-बड़े नेत्र प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसके शोकातुर मुख पर स्थिर कर दिये।

"आज आपके विरुद्ध किरण भैया ने और कुछ गुल खिलाया है। संभलकर रहियेगा," द्वार की ओर देखती हुई कमला बोली।

"तो सुनो, यदि कुछ हुआ हो तो मैं यहां का आना स्थगित कर दूं। शायद राज्य भी आज ही छोड़ दूंगा। रहा तुम्हारे लिए। मैं हर प्रकार से तत्पर हूँ। अब अधिक समय तक इस राज्य में मैं नहीं रह सकता। बोलो, तुमने क्या निर्णय किया ?"

"मैं भी तुम्हारे ही साथ चलूंगी।"

"अच्छी बात है। अब अपने चित्र बनाने की तैयारी करो," कहकर उसने दीवार पर लगी घड़ी की ओर दृष्टि उठाई। वह आठ बजने की सूचना दे रही थी। सब वस्तुएं संभालकर वह बोली, "हां, आरम्भ करो।" उसने भी गान आरम्भ कर दिया—

'तीरथ करने जाये, योगी
तीरथ करने जाये !
तिलक लगा है, राख मली है
राम मिलन की आस लगी है
हरि से कौन मिलाये ?
योगी तीरथ करने जाये !!
राम नाम की रट है लागी
सब को छोड़ा, दुनिया त्यागी
अब ना कछू सुहाये !
योगी तीरथ करने जाये !!

राम दुआरे वह सुख नाहीं
अपने पराये बिसरत नाहीं
बिसरत ना बिसराये !
योगी तीरथ करने जाये !!
खोज रहा है वह जग सारा
मन में तीरथ का उजियारा
विरह सहा न जाये !
योगी तीरथ करने जाये !!
करनी करके भूल गया है
कंटक तजकर फूल लिया है
क्यों कोई शूल चुभाये !
योगी तीरथ करने जाये !!
मोह तजो अब करो तयारी
छोड़ सभी यह दुनियादारी
क्यों यह दोष लगाये !
योगी तीरथ करने जाये !!

कविता का गायन जैसे ही समाप्त हुआ वैसे ही तूलिका कमला ने रोक दी। नेत्रों से आंसुओं की झड़ी लगी थी। आंसू पोंछती हुई बोली, "बड़ा वेदनापूर्ण गान था आपका, परन्तु था बड़ा वास्तविक।" एवं घूमकर चित्र दिखाने के लिए मोहन की ओर बढ़ाया। चित्र छूटकर जमीन पर गिर पड़ा और मुख से निकल गया, "भय्या।"

मोहन ने अपना मुख घुमाकर देखा। किरण क्रोध भरी दृष्टि से उसी की ओर देख रहा था। उसकी आकृति से स्पष्ट था कि वह एक भूखे सिंह की भांति वार करने वाला था। मोहन

संभलकर बैठ गया। कमला सहम गई और गिरे हुए चित्र को उठाकर मोहन के हाथ में पकड़ा दिया।

"मोहन !" गम्भीरतापूर्वक किरण ने कहा तथा जिस स्थान पर प्रकाशो अपनी पुत्री छाया को लेकर बैठती थी वहीं बैठ गया।

"कहो," नम्रतापूर्वक मोहन बोला।

"क्या कहूँ मोहन !" उत्तेजित होकर वह बोला। उसका मुख तथा नेत्र दोनों क्रोधवश तमतमा रहे थे।

"कह ही डालो, किरण !"

"मोहन, आपने हमारे साथ ऐसा व्यवहार किया है कि क्या बताऊँ ? अन्य कोई होता तो गोली मार देता। इस भवन की चौखट पर पैर न रखने देता," क्रोध से उसके अधर फड़फड़ा रहे थे।

"तो अब गोली मारकर अपने हृदय की अभिलाषा पूर्ण कर लो। क्यों रखते हो यह बात ?" गम्भीरतापूर्वक मोहन बोला। अब उसे भी क्रोध आ रहा था।

"तुम विश्वासघाती हो," गरजकर किरण ने कहा।

"किरण, तनिक संभलकर बात करो। विश्वासघाती मैं नहीं, तुम हो। तनिक विचार कर देखो," उत्तेजित होकर वह बोला।

कमला भी अब क्रोधाग्नि में जल रही थी। वह भी किरण की ओर जलते हुए नेत्रों से देख रही थी, परन्तु मुख पर विवशता का ताला पड़ा था।

"मोहन, मैं फिर कहता हूँ कि तुम विश्वासघाती हो, दुराचारी हो, तुमने जिस पत्तल में खाया उसी में छेद किया।"

"अर्थात् ?"

"तुम्हीं विचारो।"

"मैं क्या विचारूं। जब मैंने कुछ किया हो तब तो !"

"मुंह न खुलवाओ मोहन ! बस, इतना ही कह देना काफी होगा कि तुम्हारा विश्वास करके हम सबने मूर्खता की।"

"हां किरण, सज्जन पुरुष पर सदैव भ्रम ही किया जाता है। उस पर लांछन ही लगाये जाते हैं।"

"मैंने संसार देखा है मोहन। मैं उड़ते हुए पक्षी को पहचानता हूँ।"

"वह तो तुम्हारे इस अनुभव से ही स्पष्ट है।"

"तुमको कलाकार के नाते क्षमा किया जाता है। शायद तुम समझ बैठे होगे कि तुम जैसा कलाकार इस राज्य को प्राप्त न होगा। अरे, जिसे रुपये दिये जायेंगे वह ही तुम्हारी श्रेणी प्राप्त कर लेगा," अहंकार भरे स्वर में वह बोला।

"वे किराये के टट्टू होंगे किरण ! सच्चे कलाकार केवल कला के पुजारी होते हैं," गर्व से उसने भी उत्तर दिया।

"मोहन, संभलकर बातचीत करो। कुछ मालूम है तुम आनन्दगढ़ के भावी शासक से वार्तालाप कर रहे हो। तुम भी उन किराये के टट्टुओं में से हो जो मेरी कृपा पर जीवित हैं।"

"यह तुम्हारा खोखला अहंकार है। कलाकार पर किसी का शासन नहीं चलता। केवल कला का ही अधिकार उस पर रहता है। फिर तुम जैसे मेरी बाईं ठोकर पर रहते हैं," क्रोध से फड़कते हुए अधरों से वह बोला।

"मोहन, मैं नहीं चाहता कि अब तुम अधिक कमला से···।" क्रोध ने उसका वाक्य भी पूरा न होने दिया।

"ऐसा ही होगा," कहकर मोहन वहां से चल दिया। वह अभी द्वार से बाहर निकल ही रहा था कि देखा, विजयसिंह मर्म-

भेदी नेत्रों से उसकी ओर देख रहे थे। वह बिना उनसे कुछ बोले अपने घर आया और मालती से बोला, "मालती, आज ही यहां से प्रस्थान करना होगा। राज-सभा से विदा होकर आता हूं।"

"अरे कुछ जीम तो लो। भोजन तैयार है।"

"हां हां।" कहकर वह स्नानागर में घुस गया और स्नानादि से निवृत्त होकर उसने भोजन करना आरम्भ कर दिया और साथ-साथ सारी घटना भी मालती को बता दी, जो उस पर घटी थी।

× × × ×

मोहन ने राज-सभा में प्रवेश किया। उसे वहां का वातावरण बड़ा गम्भीर प्रतीत हुआ। उसने अपने नियुक्त स्थान पर बैठकर चारों ओर अपना सिर घुमाकर देखा। फिर उसके नेत्र एक व्यक्ति पर जा टिके। वह थी कमला, जिसने आज सिर से पैर तक नवीन प्रकार का शृङ्गार किया हुआ था। वह उस समय नई दुलहिन की भांति प्रतीत हो रही थी और यौवन फूटा पड़ रहा था। रूप निखरा पड़ता था। उसके भी हृदय में नवीन प्रकार का संचार हो रहा था। उससे उत्साहित होकर कलाकार ने अपने कोकिल कण्ठ से मधुर स्वर लहरी छेड़ी —

नैनन में न लजाओ!
न लजाओ, शरमाओ!!
इन लज्जित पलकों का प्रिय तुम
घूंघट तनिक उठाओ।
न लजाओ, शरमाओ!!
आज आंसुओं से मेरे तुम
यह आंचल धो जाने दो।

लाज न प्रियतम करो, मुझे अब
बस चंचल हो जाने दो।
मेरे नैनों में नैना धर—
कुछ तो अब मुस्काओ।
न लजाओ, शरमाओ !!
घूंघट उठने दो नैनों से,
नैनों का रस छलके।
युगल हृदय के जीवन तट पर,
प्राण मिलन को ललकें।
तुम मुझमें आन समाओ !
न लजाओ, शरमाओ !!

कमला ने भी बड़े उत्साह के साथ चित्र समाप्त कर सबके सामने रख दिया। उन्होंने देखा कविता का सजीव चित्रण और नवयुवती के सौन्दर्य तथा लज्जा की लालिमा एवं एक नवयुवक का उसका घूंघट हटाकर कविता का उच्चारण, तो सबके मुख से हर्षपूर्वक निकला, "वास्तव में यह राजसी कलाकार है। कलाएं तो इसके संकेत पर नृत्य करती हैं।" इसके उपरान्त फिर पूर्व-सा वातावरण हो गया।

मोहन ने अपने स्थान पर खड़े होकर नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "राजन्, अब यहां से मैं जारहा हूँ।"

"कारण ?" गम्भीरतापूर्वक विजयसिंह ने प्रश्न किया।

"मेरी लक्ष्मी को पूर्व के जीवन से अधिक प्रेम है। वह इस जीवन से सन्तुष्ट नहीं," नम्रतापूर्वक उसने उत्तर दिया।

सभी आश्चर्य से नेत्र फाड़े उसकी ओर इकटक देख रहे थे, परन्तु कमला धैर्यपूर्वक अपने स्थान पर विराजमान् थी। केवल

उसकी मुखाकृति से बेचैनी व्यक्त हो रही थी और किरण, वह तो भूखे भेड़िये की भांति मोहन की ओर देख रहा था।

"कलाकार, आपको सरस्वती से अधिक लक्ष्मी से प्रेम है क्या?" प्रदर्शनीय गम्भीरता से विजयसिंह ने प्रश्न किया।

"दोनों के प्रति एक-सा," दृढ़तापूर्वक उसने उत्तर दिया।

"एक-सा?" आश्चर्यपूर्वक उन्होंने पूछा।

"हां, राजन्!"

"कलाकार, तुम बड़े विचित्र हो," व्यंग भरे शब्दों में वह बोले।

वह स्थिरतापूर्वक उनके उन चढ़ते-उतरते भावों को देख रहा था।

"ऐसा क्यों?"

"इसके उत्तर में केवल इतना कहा जा सकता है कि दोनों ही कलाकार की संगिनी हैं। उसकी दृष्टि में दोनों के अधिकार बराबर हैं।"

"कहीं तुम पागल तो नहीं हो गये, कलाकार?" हंसकर उन्होंने प्रश्न किया।

"कलाकार को संसार ऐसा ही समझता है।"

"अच्छा, यह तो बताओ कि कलाकार को सबसे अधिक किससे प्रेम होता है? संसार से अथवा कला से?" मानों वह उसकी परीक्षा ले रहे थे।

"कला से," गर्वपूर्वक उसने उत्तर दिया।

"तो फिर लक्ष्मी तथा सरस्वती से आपका क्या सम्बन्ध है?"

"वे दोनों मेरी कला हैं।"

"कलाकार, स्पष्टतापूर्वक मुझे समझाने का कष्ट करो।"

"इसका उत्तर केवल यही है कि लक्ष्मी मेरी गृह-कला है तथा सरस्वती मेरी रसना। दोनों के प्रति मैं अनुचित व्यवहार नहीं कर सकता।"

"लक्ष्मी कौन है ? सरस्वती कौन है ?"

"मेरी न ?"

"हां, कलाकार।"

"लक्ष्मी मेरी मालती है तथा सरस्वती मेरी कमल है।"

"अपनी कमल ?" अवाक् होकर वह प्रश्न कर बैठे।

"हां, राजन्!" दृढ़तापूर्वक उत्तर देकर उसने एक दृष्टि कमला के मुख पर फेंकी।

उसके उस उत्तर से सब आश्चर्य में पड़ गये। किरण ने क्रोध से दांत किटकिटाकर कुछ कहना चाहा, परन्तु विजयसिंह ने कड़ककर फड़कते हुए अधरों से कहा, "कलाकार, मुंह संभालकर बात करो। कुछ ज्ञात है कमला आनन्दगढ़ के शासक की पुत्री है। तुमने उसका निरादर किया है भरी सभा में। तुमको इसके लिये दण्ड मिलेगा।"

"जी, वह आपकी पुत्री है। मैं इससे कब विमुख हूं। परन्तु वह मोहन की पत्नी है। यदि विवाह करना आपकी दृष्टि में अपराध है, निरादर है, तो मैं अवश्य दण्ड का अधिकारी हूँ," उत्तेजित होकर वह बोला।

"मेरे चाचा जी के टुकड़ों पर पले हुए कुत्ते! तेरा इतना साहस," क्रोध से कांपते हुए किरण अपने स्थान पर खड़ा होगया।

"भैया, संभलकर बात करो। कलाकार का कथन सत्य है। यह देखो मेरी मांग तथा ये वस्त्र," पागलों की भांति वह अपने स्थान पर खड़ी हो गई।

सबने देखा, वास्तव में उसकी मांग सिन्दूर से भरी हुई थी। अब तो विजयसिंह अवाक् रह गये। वह मन्त्र-मुग्ध से उसकी ओर निहार रहे थे। उनके मुख से एक शब्द भी न निकला।

"अब मुझे आज्ञा हो राजन्! व्यर्थ में विलम्ब करने से क्या लाभ? मैं आज ही चल देना चाहता हूं। बड़ा लम्बा रास्ता तय करना है," नम्रतापूर्वक मोहन बोला।

"हां हां, मोहन! तुम अभी पहुंचे जाते हो," कहकर पिस्तौल निकाली किरण ने। उसका गुटका दबाया। एक धमाके का शब्द हुआ एवं मोहन का शरीर पृथ्वी पर लोटता दीख पड़ा। कमला दौड़ पड़ी। मालती ने परदे से निकलकर उसके शीश को अपनी गोद में ले लिया, तथा किरण की ओर करुणापूर्ण नेत्रों से देखा। किरण उस वेदना भरी दृष्टि को देखकर व्याकुल हो उठा। उसका क्रोध उतर गया, अब क्षोभ तथा ग्लानि से उसका हृदय विलोड़ित हो रहा था।

"किरण, तूने यह क्या किया? अपनी भगिनी का सुहाग लूट लिया," अश्रु प्रवाहित नेत्रों से बालकों की भांति बिलख-बिलख कर विजयसिंह बोले तथा अपना सिर थामकर अपने स्थान पर बैठ गये। रानी अचेत होकर लुढ़क पड़ी। किरण ने विद्युत् की भांति झपटकर विजयसिंह के चरणों में अपना सिर रख दिया।

किरणसिंह को उपयुक्त दण्ड मिलना चाहिये। वह हत्यारा है," उत्तेजित होकर सभी दर्शकों ने कहा।

"नहीं भाइयो, नहीं, तनिक शान्त हो। सुहाग हम दोनों का लुटा है। अब किरण के प्राणों की बलि से वह लौट तो आयेगा नहीं। कोई लाभ नहीं व्यर्थ की उत्तेजना से। किरण स्वयं अपने किये पर पश्चात्ताप कर रहा है। यही उसका दण्ड है। किसी

राज्य के उत्तराधिकारी को फांसी नहीं दी जा सकती। मैंने उसे क्षमा किया," मालती ने अपना व्याख्यान दे डाला।

"बहन, तुम देवी हो," कहकर किरण मालती के चरणों में गिरने चला।

"हां हां, भय्या यह क्या करते हो? उठो, मेरे सती होने का प्रबन्ध करो," अपने दोनों हाथों से उसे उठाते हुए वह बोली। उसके मुख पर दैवी तेज था।

"बहिन! मैं भी आपके ....।"

"नहीं बहिन, तुम्हें अभी बहुत कुछ करना है। लो थामो निरञ्जन को। इसे भी तो इसके पिता जैसा बनाना है। फिर तुम्हारे ऐसा करने से सरस्वती अस्त हो जायेगी। कौन इस दीपक को प्रज्वलित रखेगा? सोचो तो," नम्रतापूर्वक मालती ने कमला को उपदेश सा दिया।

निरञ्जन को अपनी छाती से लगाकर कमला आंसू बहाती हुई बोली, "मेरे लाल, मैं तेरे लिए जीवित रहूँगी। तुझे कला के उच्चतम शिखर पर पहुंचाऊंगी," फिर विजयसिंह की ओर घूमकर याचना की, "राजन्, किरण भय्या को क्षमा कर दीजिये। यदि जी चाहे तो उसकी लड़की छाया को चित्रकला अवश्य सिखलाइयेगा।"

× × × ×

उसके उपरान्त मालती मोहन के साथ सती हो गई। कमला निरञ्जन को लेकर वहां से मोहन के ग्राम की ओर चल दी। विजयसिंह ने न जाने कितना उसे रोकने की चेष्टा की, परन्तु वह न मानी, न मानी।

[१९]

आनन्दगढ़ से आने के उपरान्त कमला निरञ्जन को लेकर मोहन के घर राजगढ़ में आई और ताला तोड़कर उसमें प्रवेश किया। चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखा तो वस्तुओं पर मिट्टी की तह इतनी लग गई थी कि उस पर चलने से पैरों के गहरे तथा स्पष्ट चिन्ह बन जाते थे। उसने धैर्यपूर्वक नाक को आंचल से ढककर सभी वस्तुएं भली प्रकार उपयुक्त स्थानों पर रखीं। घर की सफाई करके वह वहीं रहने लगी और निरञ्जन की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध उसने चित्रों द्वारा प्रारम्भ किया। छोटे-छोटे चित्र बनाकर उनमें सजीवता के चिन्ह भर देती एवं बालक निरञ्जन को अपने समीप बिठाकर प्रश्न करती, "क्यों पुत्र, तुम इस चित्र में क्या देखते हो? इसमें भानु क्या कर रहा है?"

"हल चला रहा है मां," अबोधतापूर्वक वह उत्तर देता।

"हां पुत्र, हल किस शब्द से निकला?"

"ह से।"

धीरे-धीरे निरञ्जन को कमला ने अपने चित्रों द्वारा प्राप्त होने वाले धन से शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी। मैट्रिक तक शिक्षा घर पर दिलाने के बाद कमला ने उसे जम्मू के कॉलेज में प्रविष्ट करा दिया। वहां पर वह शिक्षा में उन्नति करने के साथ साथ संगीत तथा काव्य-कला में भी निपुण होगया और बड़ी योग्यतापूर्वक बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर ली।

× × × ×

सत्रह वर्ष उपरान्त—

बी० ए० की डिग्री प्राप्त करके लौटने पर निरञ्जन ने प्रफुल्लित हृदय से अर्ध श्वेत केशवाली कमला के चरण

स्पर्श किये। उस समय वह बीस वर्ष का नवयुवक था। उसके पश्चात् एक नवयुवती ने भी कमला के प्रति वही व्यवहार किया। कमला सरल वस्त्रों से अपने शरीर को सुसज्जित किये हुए मूर्ति की भांति मुस्करा रही थी। उसने प्रेम-पूर्वक निरञ्जन को अपने हृदय से लगा लिया। "अब मैं तेरी परीक्षा लूंगी," मुंह बनाकर हंसती हुई वह बोली। फिर जब कुछ संभली तो निकट ही बैठी हुई उस नवयुवती की ओर संकेत करती हुई बोली, "मेरे लाल, इनका तो परिचय······?"

"मां, आप आनन्दगढ़ के शासक किरणसिंह की पुत्री, छायाकुंवारी हैं। यह भी वहीं मेरे कॉलेज में इण्टर में विद्याध्ययन करती थीं। आप एक सफल चित्रकार भी हैं। जिसका प्रमाण यह इस प्रकार देंगी कि मेरी कविता की ध्वनि पर उसके भावों का वास्तविक चित्रण कर देंगी।"

छाया की ओर कमला अपने बड़े-बड़े नेत्रों द्वारा इकटक निहार रही थी। उसके मस्तिष्क में भविष्य के विचार नृत्य कर रहे थे, "किरण बड़ा कट्टर तथा निर्दयी शासक है। छाया उसकी एक मात्र लाडली सन्तान है। निरञ्जन उससे प्रेम करने लगा है। कहीं इसका पता किरण को होगया तो बड़ा अनर्थ हो जाने की सम्भावना है। परन्तु इन दोनों के हृदय एक हो चुके हैं। तभी तो अपने निरञ्जन की रसना छाया बन चुकी है।"

"मां, हम दोनों कला-प्रदर्शिनी देखने श्रीनगर गये थे। वहां इन्होंने वर्षा ऋतु का चित्र खींचा था। मैंने बैठकर उस पर कविता की थी तथा उसे संगीत में परिवर्तित कर दिया था। वह कविता भी उस चित्र के नीचे लिखी हुई थी। उस पर इन्हें पन्द्रह सौ रुपये का पुरस्कार मिला था," गद्गद् कण्ठ से उसने कहा।

"पुत्र, यदि आपत्ति न हो इनको तो यह अपनी कला का प्रदर्शन कर मुझे सन्तुष्ट करें," कहकर कमला ने निरञ्जन के मुख पर अपने प्रश्न-सूचक नेत्र गड़ा दिये।

"छाया, तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं?"

"नहीं," नम्रतापूर्वक छाया बोली।

"तो मां, अपने ऊपर के कमरे में इसका.........?"

"हां हां!" यह कमला थी।

"चलो छाया," कहकर निरञ्जन छाया को लेकर ऊपर के कमरे में पहुंचा। वह कमरा कमला के पुरस्कृत चित्रों से सुसज्जित था। छाया ने उनको देखते हुए उच्चारण किया, "सुनो, ये चित्र तो स्वयम् ही अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी कलाकार ने बैठकर अपनी कविता सङ्गीत के रूप में परिणत कर दी हो और चित्रकार ने उसका सजीव चित्रण किया हो। यदि मैं उस चित्रकार के दर्शन कर पाऊं तो उसके चरणों में ही अपना जीवन व्यतीत कर दूं।"

"वह चित्रकार मेरी मां है और कलाकार मेरे पिता थे।"

इतने में कमला ने वहां प्रवेश किया। दोनों संभल गए। निरञ्जन ने कहा, "मां, उस भिखारिणी का चित्र दे दो। मैं उसी पर कविता कहूँगा। छाया उसका चित्र खीचेंगी।"

"अच्छी बात है," कमला ने आज्ञा दे दी।

निरञ्जन ने उस भिखारिणी के चित्र को अपने दोनों हाथों में थामकर कहना आरम्भ किया—

है चली आती भिखारिन
शुष्क कुन्तल केश खोले!

कमला को ऐसा प्रतीत हुआ मानों वह अपने उपवन में

मोहन के साथ बैठी हो। निरञ्जन वही कविता अलाप रहा था और छाया उसकी तरह उसके एक-एक शब्द का चित्रण कर रही थी। अब उसे भली प्रकार सान्त्वना प्राप्त हो गई कि उसका निरञ्जन वास्तव में एक सफल कलाकार है।

है चली आती भिखारिन, शुष्क कुन्तल केश खोले।
वह भिखारिन दीन हीना
आरही आवरण हीना
भूख के मारे अरे, उसके बिलखते लाल भोले॥
पास से निकला बटोही
चाप सुन वह आह रोई
'हो भला दाता' भिखारिन के सिसकते प्राण बोले।
एक पैसे का सहारा
दो भला होगा तुम्हारा
चल दिये उसके चरण यों डगमगाते मौन हौले॥
है चली आती भिखारिन, शुष्क कुन्तल केश खोले।

कविता समाप्त होते ही छाया ने अपना रेखा-चित्र कमला के हाथों में दे दिया। निरञ्जन ने कमला का बनाया हुआ चित्र उसी चित्र के सम्मुख रखकर देखा। उन दोनों में कोई अन्तर न था। कमला के मुख से निकल गया, "हां पुत्री, तुम एक सफल चित्रकार हो।" वह नीचे चली गई और जाते ही मोहन के चित्र को देखकर बोली, "सुनते हो देव, आज तुम्हारा निरञ्जन सफल कलाकार बनकर आया है।" एवं हर्ष से उन्मादिनी-सी होकर उस चित्र पर अपना शीस टेक दिया।

"छाया, सन्ध्या हुआ चाहती है। न हो भोजन तुम्हीं बना डालो," मुस्कराकर निरञ्जन ने छाया से कहा।

"भद्द कराओगे क्या ?" लज्जा भरे नेत्रों से मुस्कराती हुई वह बोली।

"बनती क्यों हो ? मुझे श्रीनगर में बनाकर कौन खिलाता था ?"

"मां न बनाने देंगी," मुंह बनाकर वह बोली।

"तुम जाओ भी तो!" अनुरोध भरे स्वर में वह बोला।

"अच्छा।" कहकर वह वहां से नीचे आई। कमला भोजन की वस्तुएं ठीक कर रही थी। छाया ने अनुरोध कर उससे रसोई का भार ले ही लिया।

× × × ×

उसी रात में —

भोजन से निवृत्त होकर निरञ्जन अपने पिता मोहन के कमरे में सोने चला गया, परन्तु उसका हृदय व्याकुल था। निरञ्जन छाया की बाट जोह रहा था कि वह आजाती तो दूसरे दिन के क्रम का निर्णय कर लिया जाता, परन्तु छाया कमला के पास थी। वह भी इसी अवसर की ताक में थी कि कमला किसी प्रकार सो जाय और वह निरञ्जन के पास पहुँचे। अन्त में लगभग साढ़े दस बजे कमला को झपकी सी आ ही गई। बस! छाया उसको सोती देखकर वहां से दबे पैर पञ्जों के बल निरञ्जन के कमरे की ओर चल दी।

चन्द्रदेव उस समय छाया के उस कार्य पर खिलखिलाकर हंस रहे थे, परन्तु वह पञ्जों के बल आगे-पीछे भली प्रकार देखती निरञ्जन के कमरे की ओर बढ़ रही थी। छत पर पहुँच कर उसने एक बार नीचे झांका। देखा, कमला स्तब्ध पड़ी थी। उसके विचार से निद्रा में अचेत। परन्तु नहीं! वह (कमला) सचेत हो चुकी थी तथा छाया के उस क्रम को स्तब्ध पड़ी निरख रही थी।

तो छाया निरञ्जन के पास पहुंच ही गई। उसने मुस्कराकर

क्षीण स्वर में कहा, "तो तुम आगई ?"

"हूँ।" चंचलता से नेत्र नचाती हुई वह बोली।

"मां! सोगई होंगी ?"

"और क्या ?"

"आओ कल के कार्य-क्रम का निर्णय कर डाला जाये। तुम तो परसों जाओगी न ?"

"मैं तो यहां से कभी नहीं जाना चाहती," कहकर उसके पास लेट गई। उसने भी थोड़ा-सा खिसककर उसे स्थान दे दिया।

उधर कमला भी उठी तथा छाया के पीछे-पीछे आकर स्तब्धता-पूर्वक बिना शब्द किये हुए कमरे के द्वार से सटकर खड़ी होगई। वहां उन दोनों के शब्द स्पष्ट रूप से सुने जासकते थे।

"छाया! बोलो, क्या मैं कल सब मां से बतादूं कि मैंने तुमसे विवाह कर लिया है काश्मीर में ?"

"कह दो। परन्तु कहीं वह बिगड़ न जायें।"

"छाया, तुम मेरी मां को नहीं समझतीं। वह अपने पुत्र को सदा सुखी देखना चाहती हैं, परन्तु सत्य-मार्ग पर चलकर।"

"परन्तु हमारे इस प्रकार के प्रेम को संसार बुरा समझेगा।"

"समझा करे। मेरी मां नहीं समझतीं। वह तो कहती थीं कि विवाह दो हृदयों का मेल है। यदि ये ही न मिले तो जीवन किस काम का ? फिर हम दोनों उच्च कुल के हैं।"

"हां! मैंने यही निर्णय कर लिया है। जब वह स्वीकार न करेंगी तो उनके चरणों में अपना शीश रख दूंगी और कहूंगी, 'मां, अब चाहे ठुकरा दो या चाहे अपने चरणों में स्थान दो,' यही एक उपाय है।"

"परन्तु उन्होंने तो परीक्षा लेने के लिए कहा है। इसलिए

तुम प्रश्न करो और मैं उत्तर दूं। यह ध्यान रहे कि वह कला के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी प्रश्न कर सकती हैं। तो तैयार हो जाओ।

कमला अपने पुत्र की इतनी भक्ति पर मुग्ध हो गई।

"समझ लो अब मां ने आरम्भ किया," यह छाया थी।

"क्या?"

"तुमने इन सत्रह वर्षों में क्या सीखा?"

"मैं उत्तर दूंगा, 'मां! केवल इतना ही कि मनुष्य स्वयम् अपने आचरण का बनाने वाला है। कोई उसे विवश कर उसके आचरण को नहीं बना सकता।' क्यों ठीक है न?"

"वह फिर प्रश्न करेंगी, 'इसके अतरिक्त?'"

"सत्य-मार्ग पर चलने वाला सदैव लाञ्छन सहन करता रहता है, परन्तु अन्त में उसे इतना सुख प्राप्त होता है कि वह उसको भोग करने में असमर्थ हो जाता है एवं शीघ्र ही अपनी कीर्ति छोड़कर संसार से चल देता है। यही उसकी साधना होती है।"

"और?"

"लक्ष्मी मनुष्य को अहंकारी बना देती है। वह उसके वशीभूत होकर अपना कर्त्तव्य भूल बैठता है। अन्य व्यक्ति उसकी झूठी प्रशंसा कर उसे और भी पथ-भ्रष्ट कर देते हैं एवं वह उसी के मद में अपना लोक-परलोक दोनों नष्ट कर बैठता है।"

"अच्छा, कला के विषय में तुम्हारा क्या विचार है?"

"कला वह वस्तु है जिसके सीखने की जिज्ञासा स्वयम् उत्पन्न होती है। यह मार-मारकर, बाध्य होकर नहीं सीखी जा सकती। यह एक अपार-सागर है जिसमें न जाने कितनी कलाएं मोतियों की भांति अदृश्य हैं। इसकी कोई थाह नहीं। मनुष्य यदि उसमें

से सारी कलाएं प्राप्त करना चाहे तो शायद असमर्थ रहेगा। शायद वह सौ जन्म लेकर भी उनको न प्राप्त कर सके। कला के लिये सच्ची लगन तथा हृदय में गम्भीरता होना आवश्यक है। कारण, कला के पुजारी अर्थात् कलाकार सदैव घृणा से देखे जाते हैं। सच्चे कलाकार को सुख-दुख से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इस सागर में एकाग्र-चित्त हो वह आगे बढ़ता है, संसार के कटु शब्दों की चिन्ता न करके।"

"कुछ कलाओं के नाम तो बताओ?"

"कविता, सङ्गीत, चित्रकला, नृत्य तथा ऐसे ही अन्य।"

"इन चारों कलाओं के विषय में तुम्हारा क्या विचार है?"

"ये परस्पर एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। यदि कविता को सङ्गीत के रूप में परिवर्तित कर चित्रित किया जाय तो उसका सजीव तथा स्वाभाविक चित्रण होगा एवं वह चित्रकार भी सफल चित्रकार कहायेगा। यही बात नृत्यकला के ज्ञाता के साथ भी लागू होती है। वह उसी के भाव अपने शरीर के अंगों से नृत्य के रूप में प्रदर्शित कर सकता है।"

"समझ लो, यही प्रश्न मां जी ने कर लिये और तुमने ये ही उत्तर दे दिये। बस! अब सो जाओ," कहकर छाया ने निरञ्जन को अपने बाहु-पाश में कस लिया। अपने बायें कपोल को उसके दायें कपोल पर रखती हुई वह चन्द्रदेव की ओर अभिलषित नेत्रों से देखने लगी और क्षीण स्वर में प्रश्न किया, "क्यों, कभी इस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा को देखकर तुम्हारे हृदय में कुछ उत्पन्न हुआ है?"

"इससे पूर्व कभी ऐसे विचार ही उत्पन्न नहीं हुए।"

"बड़ा सुखमय प्रतीत होता है मुझे इस प्रकार। तुम्हें?"

"जैसा समझो।"

कमला को अब अतीत की बातें स्मरण होने लगीं। वह तुरन्त वहां से खिसककर अपनी खाट पर आ पड़ी।

दोनों युवा-हृदय प्रेम-सागर में आकण्ठ निमग्न होगये। जब उनको निद्रा आने लगी तो छाया ने लज्जा भरे नेत्रों से कहा, "आज हमारी सुहाग-रस्म थी। अब चलूं, तीन बज गये," वह चुपके से आकर कमला के पास वाली चारपाई पर लेट गई।

× × × ×

छाया के पत्र से उसके जम्मू से राजगढ़ चले जाने का समाचार जानकर किरणसिंह आग बबूला होगया। उसका पुरुष-सिंह गर्जन कर उठा और तुरन्त ही सेना-नायक को बुलाकर कुछ सरदार साथ में लेकर उसने उस गांव को प्रस्थान कर दिया और रातों रात वे उस गांव में जा पहुंचे जहां छाया आई थी।

अभी निरञ्जन भली प्रकार सोया भी न था कि उसने घोड़ों की टापों के स्वर सुने। घोड़ों का शब्द उसके घर के ही पास आकर रुक गया। अचानक उसके गृह-द्वार को किसी ने बड़े जोर से थपथपाया। वह अपनी खाट पर से उछलकर उठ खड़ा हुआ और अपने पिता की तलवार हाथ में लेकर जोर से कहा, "राजसी कलाकार का शस्त्र।" फिर खिड़की से झांककर देखा कि एक व्यक्ति हाथ में पिस्तौल लिये द्वार खटखटा रहा था। वह तुरन्त कड़ककर बोला, "कौन हो तुम? द्वार क्यों तोड़े डालते हो? कहीं भूल तो नहीं गये? यह राजसी कलाकार का घर है।"

"नीचे आइये, राजसी कलाकार जी," मुंह बनाकर उसने कहा।

"अच्छी बात है," कहकर वह नंगी तलवार लिये नीचे उतर

आया।

कमला जाग चुकी थी। छाया भय से थर-थर कांप रही थी। उसने कमला से कांपते हुए स्वर में कहा, "मां, शायद डाकू आये हैं।"

इतने में निरञ्जन ने विद्युत् की भांति आकर द्वार खोल दिये। वह व्यक्ति हाथ में पिस्तौल ताने भीतर घुस आया और अकड़कर बोला, "वह नराधम कहां है जिसने छाया को बहकाया है और अपने पास रख छोड़ा है?"

"तनिक संभलकर बात कीजिये। किसी ने छाया को बहकाया नहीं। वह स्वयं अपनी इच्छा से उसके यहां ठहरी है। वह नराधम मैं हूँ," उत्तेजित होकर निरञ्जन बोला।

"तो वह महापुरुष आप ही हैं?" मुंह बनाकर वह बोला तथा उस पर गोली चलाने के लिये उद्यत हुआ। निरञ्जन ने तलवार चलाने के लिये हाथ उठाया।

कमला अब झपटकर निरञ्जन और किरण दोनों के बीच में आगई थी। उसने पिस्तौल वाले व्यक्ति की ओर भली प्रकार देखकर कहा "भय्या, यह क्या?"

"कमला, मेरी बहिन!" और उसकी पिस्तौल हाथ से छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। वह भी उसके चरणों में झुक गया।

"पिता जी, वास्तव में आप एक योग्य कलाकार हैं," यह ाया थी।

"पुत्री! मुझे क्षमा कर। नराधम तो मैं हूं जो अपने पुत्री के ाग-सूर्य को अस्त कर रहा था।"

"तो आप ही आनन्दगढ़ के शासक श्रीमान् किरणसिंह हैं?" म्भीरतापूर्वक निरञ्जन ने कहा।

"हां पुत्र ला अपने पिता की तलवार दे दे," यह कमला थी।

"राजसी कलाकार का पुत्र राजसी कलाकार होता है," सजग होकर किरण ने कहा।

"भैया, तुम्हारा कथन सत्य है।"

"मां! तुम साक्षात् माता सरस्वती हो," कहकर निरञ्जन ने उसके चरणों में अपना सिर रख दिया। छाया भी उसका साथ दे रही थी।

सब स्तब्धतापूर्वक उस दृश्य को मन्त्र-मुग्ध से देख रहे थे। उनकी जिह्वा पर यही था, "निरञ्जन, तू वास्तव में राजसी-कलाकार है।"